प्यारे ख़लीफ़ा (रज़ि.)

माइल ख़ैराबादी

अनुवादक

डॉ. पी. एच. चौबे

विषय-सूची

'बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम'

(अल्लाह के नाम से जो बड़ा कृपाशील, अत्यन्त दयावान है।)

दो शब्द

प्यारे नबी (सल्ल.) के साथी यानी सहाबा और सहाबियात (रज़ि.) दुनिया के वे महान लोग हैं जो नबियों के बाद तमाम इनसानों में सबसे बुज़ुर्ग और बरतर हैं। उनकी ज़िन्दगी के कारनामे ऐसे हैं जिनसे अल्लाह और अल्लाह के प्यारे नबी (सल्ल.) राज़ी और ख़ुश हुए।

जब हम इन बुज़ुर्गों की ज़िन्दगी के हालात पढ़ते हैं तो हमारा दिल चाहता है कि जो कुछ इन बुज़ुर्गों ने किया वही हम भी करें सच्ची बात यह है कि हमारे अन्दर दीन पर जमने और उसे फैलाने की एक लगन पैदा होती है। हम महसूस करते हैं कि अगर अल्लाह ऐसे मुबारक लोग पैदा न करता तो दीन अपनी सही शक्ल में हमारे सामने न आता। इनसानों के लिए नबियों के बाद इन्हीं बुज़ुर्गों की ज़िन्दगी में बेहतरीन नमूना है। ये बुज़ुर्ग जिस तरह इस्लामी शिक्षाओं को लेकर आगे बढ़े, नबी (सल्ल.) की हिमायत में उन्होंने जो क़ुरबानियाँ दीं और जिस जोश और जमाव के साथ उसे फैलाया वह आम तौर पर दुनिया के तमाम इनसानों और ख़ास तौर पर मुसलमानों के लिए बेहतरीन नमूना है। अल्लाह से दुआ है कि इन बुज़ुर्गों की बातें तमाम पढ़नेवालों के लिए अल्लाह की ख़ुशी हासिल करने का ज़रिया बने !

इस किताब में हमने इस्लाम के पहले चार ख़लीफ़ा – हज़रत अबू बक्र, हज़रत उमर फ़ारूक़, हज़रत उसमान ग़नी और हज़रत अली (अल्लाह इन सब से राज़ी हो !) के हालात मुख़्तसर तौर पर बहुत ही आसान ज़बान में लिखे हैं ताकि हमारे बच्चे-बच्चियाँ और नव-जवान आसानी से पढ़ सकें और फ़ायदा उठा सकें। हमें उम्मीद है कि हमारी यह कोशिश अल्लाह ज़रूर कामयाब करेगा।

– प्रकाशक

हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.)

हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) मक्का के मशहूर ख़ानदान क़ुरैश के एक बड़े घराने (बनू तैम) में पैदा हुए। बाप का नाम अबू क़ुहाफ़ा बिन आमिर और माँ का नाम सलमा बिन्त सख़्र था। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) मक्का के उन चार ख़ुशनसीबों में से हैं जो प्यारे रसूल (सल्ल.) पर सबसे पहले ईमान लाए।[1]

उस समय अरब में कहीं कोई हुकूमत क़ायम नहीं थी और न कोई बादशाह था। जिस ख़ानदान के लोग जिस जगह रहते थे बस वहाँ वही लोग थे। प्रत्येक ख़ानदान के लोग अपने में से किसी को अपना सरदार चुन लेते, उसी का आदेश मानते, उसी के कहने पर चलते और जो कुछ वह करता उसमें उसका साथ देते। किसी दूसरे की हिम्मत न थी कि किसी ख़ानदान को किसी काम से रोक दे या किसी बात पर टोक दे। यदि कोई ऐसा करता तो एक ख़ानदान से दूसरे ख़ानदान की लड़ाई छिड़ जाती और बड़ा ख़ून-ख़राबा होता। अरब में ऐसी लड़ाइयाँ आए दिन हुआ करती थीं। हर समय डर लगा रहता कि न जाने कब किससे लड़ना पड़ जाए। इसलिए सब हर समय अपने बचाव के लिए चौकन्ना और दूसरों से लड़ने के लिए तैयार रहते थे।

इस सिलसिले में क़ुरैश ख़ानदान के लोगों ने बड़ा अच्छा प्रबन्ध किया था। क़ुरैश ख़ानदान में दस बड़े घराने थे। सारा प्रबन्ध इन्हीं दस घरानों में बाँट

1. औरतों में सबसे पहले हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) ने इस्लाम क़बूल किया। मर्दों में सबसे पहले हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) ईमान लाए। बच्चों में सबसे पहले हज़रत अली (रज़ि.) मुसलमान हुए और नौजवानों में सबसे पहले ज़ैद बिन हारिसा (रज़ि.) को यह नेमत मिली।

दिया गया था। मक्का में काबा है, काबा के तवाफ़ (परिक्रमा) के लिए दूर-दूर से लोग मक्का जाते हैं। क़ुरैश ने अपने ज़माने में हाजियों के ठहराने का इन्तिज़ाम एक घराने के सुपुर्द कर दिया था। उस समय हाजियों के लिए पानी इकट्ठा करना एक बड़ा ही कठिन काम था। यह काम एक मेहमान-नवाज़ घराने के ज़िम्मे था। कहीं लड़ाई पेश आ जाए या किसी से लड़ना पड़ जाए तो उसके लिए तैयार रहना और लड़ाई के सारे इन्तिज़ाम करना एक ऐसे घराने के ज़िम्मे था जो लड़ने-मरने में बड़ा निडर था। इसी तरह दूसरे कामों में एक काम था – "ख़ूनबहा का फ़ैसला करना ।"[1] यह बड़ा मुश्किल काम था। जब कहीं किसी से ख़ून हो जाता है तो दोनों तरफ़ बड़ा ग़म और और ग़ुस्सा होता है । दूसरों के ग़ुस्से को ठंडा करके उनमें समझौता वही कर सकता है जो बहुत ही समझदार हो। साथ ही वह ऐसा भरोसेमंद आदमी हो कि वह जो फ़ैसला कर दे, उसे सब मान भी लें। क़ुरैश को सारे मक्का में ऐसा समझदार और भरोसे का आदमी बनू तैम के घराने में मिला। यह थे हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) जो ख़ूनबहा का फ़ैसला करते समय जो फ़ैसला कर देते क़ुरैश उसको मान लेते। अबू बक्र (रज़ि.) के अलावा अगर कोई दूसरा व्यक्ति फ़सला करता तो हरगिज़ न मानते।

हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.), प्यारे नबी मुहम्मद (सल्ल.) से ढाई वर्ष छोटे थे। बचपन ही में नबी (सल्ल.) से दोस्ती हो गई थी। प्यारे नबी (सल्ल.) की प्यारी बातें उन्हें बचपन ही से प्यारी लगने लगी थीं। जो बात आपमें देखते अपना लेते। प्यारे नबी (सल्ल.) बचपन ही से बड़े साफ़-सुथरे रहते थे। आपके बचपन के साथी हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) भी बचपन से ही साफ़ सुथरे रहने लगे थे। अरब के लोग शराब पिया करते थे। प्यारे नबी (सल्ल.) को शराब से नफ़रत थी। इसी तरह आपके बचपन के साथी हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने भी कभी शराब नहीं पी।

---

1. यदि कोई व्यक्ति किसी को क़त्ल कर दे तो उसके बारे में एक फ़ैसला यह होता है कि बदले में उसे भी क़त्ल कर दिया जाए। दूसरा फ़ैसला यह होता है कि क़त्ल करनेवाले से क़त्ल हो जानेवाले के घरवालों को कुछ रक़म दिला दी जाए और समझौता करा दिया जाए,। यही रक़म खूनबहा की रक़म कही जाती है। इसे "दीयत" भी कहते हैं।

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) के बड़े होने पर एक बार एक आदमी ने पूछा, "आपने कभी शराब नहीं पी?" जवाब दिया, "ख़ुदा बचाए, कभी नहीं।" उसने फिर पूछा "क्यों नहीं पी?" बताया, "मैं नहीं चाहता कि मेरे बदन से बू आए, और यह कि शराब पीनेवाला मुरव्वत और शराफ़त खो बैठता है।" जिस समय वह आदमी अबू बक्र (रज़ि.) से यह सब पूछ रहा था, नबी (सल्ल.) भी मौजूद थे। आप (सल्ल.) ने दो बार कहा, "अबू बक्र सच कहते हैं, अबू बक्र सच कहते हैं।"

इस बात से मालूम होता है कि हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) को बचपन ही से सफ़ाई पसन्द थी और बचपन ही से बड़े रहमदिल और शरीफ़ थे। छोटे-बड़े हर आदमी से नरमी के साथ मिलते-जुलते। इसी लिए मक्का-भर में सब उनकी इज़्ज़त करने लगे थे।

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) के बचपन में घर-घर बुतों की पूजा होती थी। ख़ुद उनके घर के एक कमरे में बुत रखे हुए थे। लेकिन नबी (सल्ल.) की तरह उन्होंने भी कभी किसी बुत को नहीं पूजा।

बड़े होकर हज़रत अबू बक्र ने अपने लिए तिजारत का पेशा पसन्द किया। तिजारत में ख़ूब पैसे कमाए। और मक्का के मालदार लोगों में गिने जाने लगे। सैंतीस (37) साल की उम्र में बिना किसी हिचकिचाहट के इस्लाम क़बूल कर लिया और तन-मन-धन से हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) के सच्चे साथी बन गए।

दीन फैलाना

मुसलमान होने के बाद हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) इस कोशिश में लग गए कि दूसरे लोग भी इस्लाम क़बूल कर लें। हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) को अल्लाह का नबी मान लें और मुसलमान हो जाएँ। अल्लाह के हुक्मों पर चलें, प्यारे रसूल (सल्ल.) का कहना मानें और अल्लाह को ख़ुश करके जहन्नम की आग से बच जाएँ। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) के मिलने-जुलनेवाले मक्का में छोटे-बड़े सब थे। सबसे मेल-जोल था और सब आपकी इज़्ज़त करते थे। अब

आपने अपने दोस्तों से बहुत ज़्यादा मिलना-जुलना शुरू कर दिया। ख़ास तौर पर मक्का के बड़े-बड़े घरानों के नौजवानों को समझाना शुरू किया। आपके समझाने का तरीक़ा बहुत अच्छा था। आप कहते कि देखो! मैं अल्लाह के रसूल (सल्ल.) को बचपन से जानता हूँ। मैंने किसी बात में नबी (सल्ल.) को झूठ बोलते नहीं देखा, तो क्या वे अल्लाह के बारे में झूठ बोलेंगे? मैंने हमेशा नबी (सल्ल.) को नेक पाया। जब देखा तो लोगों की सेवा करते देखा। नबी (सल्ल.) तो हमारी भलाई चाहनेवाले हैं। सबको जहन्नम की आग से बचाना चाहते हैं। कैसे अच्छे हैं नबी (सल्ल.)! फिर अपनी नेकियों का बदला भी किसी से नहीं चाहते। अच्छी बातों के सिलसिले में सारे ही लोग नबी (सल्ल.) को मानते हैं। अमीन और सादिक़ कहकर पुकारते हैं। वे जो कुछ कहते हैं सच कहते हैं और सबके भले की बात कहते हैं। ऐसे नेक इनसान और पाक रसूल की बात ज़रूर मान लेनी चाहिए। और भाई! मैं तो नबी (सल्ल.) को बहुत अच्छी तरह जानता हूँ। मैं गवाही देता हूँ कि वे जो अपने को अल्लाह का रसूल कहते हैं तो बिलकुल सच कहते हैं और सचमुच अल्लाह ही इबादत के लायक़ है। यह बुत ख़ुदा कैसे हो सकते हैं? यह तो पत्थर की मूर्तियाँ हैं। इन्हें लोगों ने ख़ुद गढ़ लिया है, ये बुत तो बिलकुल बेबस हैं, न बोल सकते हैं, ... न देख सकते हैं और न ही सुन सकते हैं। ये तो अपने ऊपर बैठी हुई मक्खी तक नहीं उड़ा सकते तो फिर ये दूसरों की मदद कैसे कर सकते हैं? वह तो अल्लाह ही है जो सबका पैदा करनेवाला है। वही सबको रोज़ी देनेवाला है, सबकी ज़रूरतों को पूरा करनेवाला और सबकी दुआएँ सुननेवाला है। मौत और ज़िन्दगी सब उसी अल्लाह के हाथ में है। हमारा मालिक, पालनहार और हाकिम वही हो सकता है। हमें उसी का आदेश मानना चाहिए और उसके आदेश पर उसी तरह चलना चाहिए जिस तरह प्यारे नबी हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) बताते हैं।

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) की ये बातें ऐसी साफ़ और सादा होती थीं कि सबकी समझ में आ जाती थीं। इन बातों के साथ-साथ आप सबको क़ुरआन सुनाते और समझाते कि देखो, कैसा प्यारा कलाम है! क्या ऐसा कलाम कोई इनसान पेश कर सकता है? नबी होने से पहले प्यारे नबी (सल्ल.) ख़ुद भी ऐसा कलाम पेश नहीं करते थे। फिर भला हम क्यों न गवाही दें कि मुहम्मद (सल्ल.)

अल्लाह के रसूल हैं?

नौजवानों के दिलों में ये बातें उतर गईं और बड़े-बड़े घरानों के नौजवान धड़ाधड़ मुसलमान होने लगे। हज़रत उसमान (रज़ि.) मुसलमान हो गए, हज़रत ज़ुबैर मुसलमान हो गए, हज़रत अब्दुर्रहमान बिन औफ़ मुसलमान हो गए, हज़रत सअद बिन वक़्क़ास मुसलमान हो गए, हज़रत अबू उबैदा बिन जर्राह मुसलमान हो गए, हज़रत तलहा और हज़रत अबू सलमा भी मुसलमान हो गए।

अरे भाई! कोई कहाँ तक गिनाए। बड़े घरानों में से कोई-न-कोई नौजवान मुसलमान ज़रूर हुआ। यह बात फैली और मक्का के सरदारों ने जब देखा कि अबू बक्र (रज़ि.) की कोशिश से घर-घर इस्लाम फैलने लगा तो वे नबी (सल्ल.) के साथ-साथ हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) के भी दुश्मन हो गए और अपने-अपने घर के नौजवानों को मना करने लगे कि उनसे न मिला करें। लेकिन भाई नौजवानों की बात तो और ही होती है। जब उनकी समझ में सच बात आ जाती है तो फिर वे निःसंकोच उसे मान लेते हैं, फिर उन्हें कोई रोक ही नहीं सकता। अब नौजवान छुपकर मिलते, चुपके-चुपके और लोगों को भी यही बातें समझाते। इस तरह नौजवानों में इस्लाम ख़ूब फैला और यह सब हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) का कारनामा था।

एक नौजवान का बड़ा अजीब क़िस्सा है। उस नौजवान का नाम था ख़ालिद बिन सईद – ख़ालिद बिन सईद (रज़ि.) एक रईस के लड़के थे। एक रात उन्होंने ख़ाब में देखा कि एक गुफा है। गुफा में आग भरी है। आग भड़क रही है। शोले उठ रहे हैं। और वह गुफा के किनारे खड़े हैं और उनके बाप सईद उनको उस आग में ढकेल रहे हैं। इतने में हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) आ गए और आप (सल्ल.) ने ख़ालिद बिन सईद (रज़ि.) को पकड़ लिया और आग में गिरने से बचा लिया।

यह भयानक ख़ाब देखकर हज़रत ख़ालिद बिन सईद घबरा गए और चौंक पड़े। फिर उन्हें नींद नहीं आई। दिल ही दिल में कहा कि यह ख़ाब सच्चा है। सुबह होते ही अपने बुज़ुर्ग दोस्त हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) के पास जा पहुँचे और ख़ाब सुनाकर उसका मतलब पूछा। हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) ख़ाब

की ताबीर बड़ी ही सच्ची बताते थे। कहा, "ऐ ख़ालिद! यह ख़ाब बिलकुल सच्चा है। तुमने जो आग का गड्ढा देखा है वह जहन्नम (नरक) है, देखो, तुम्हारे बाप तो मुसलमान न होंगे, वे तुमको भी मुसलमान बनने से रोक लेंगे। ख़ुद तो जहन्नम में जाएँगे ही, साथ ही तुमको भी इस तरफ़ घसीटने की कोशिश करेंगे, और जो तुमने यह देखा कि नबी (सल्ल.) तुमको पकड़े हुए आग में गिरने से बचा रहे हैं तो इसकी ताबीर यह है कि तुम एक दिन ज़रूर मुसलमान हो जाओगे। जहन्नम की आग से बच जाओगे। तो भाई! जब यह होना ही है तो जल्दी करो, तुम आज ही मुसलमान हो जाओ। अब देर करने की क्या ज़रूरत है!"

बात बिलकुल साफ़ थी। हज़रत ख़ालिद (रज़ि.) उसी समय हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) के साथ हो लिए और नबी (सल्ल.) के पास जा पहुँचे। सारा वाक़िया बताया तो नबी (सल्ल.) ने कहा कि अबू बक्र ने जो कुछ बताया, बिलकुल सच बताया है। ख़ालिद ने जब नबी (सल्ल.) से यह सुना तो बोले, "अच्छा तो फिर आप सबको क्या उपदेश देते हैं?" आप (सल्ल.) ने कहा, "मैं कहता हूँ कि सिर्फ़ एक अल्लाह को पूजो। उसी ने तुमको पैदा किया है, वही सारी ज़रूरतों को पूरा करनेवाला है, वही मालिक है, वही पालनहार है, वही हाकिम है और वही राजा है, उसी का हुक्म मानो। यदि कोई अल्लाह के हुक्मों के ख़िलाफ़ हुक्म दे तो ऐसा हुक्म कभी न मानो और मुझे अल्लाह का रसूल जानो। बुतों की पूजा छोड़ दो। ये बुत बेजान हैं, बहरे और गूँगे हैं। यह बुत ख़ुद नहीं समझते कि कौन इनकी पूजा कर रहा है? देखो ख़ालिद ! जो मेरा कहना मानेगा वह दोज़ख की आग से बच जाएगा।"

ये वही बातें थीं जो हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने नबी (सल्ल.) से सीखी थीं। यही बातें वे नौजवानों से कहा करते थे। ख़ालिद बिन सईद के दिल में यह बातें बैठ गईं और उसी समय कलिमा पढ़ लिया और मान लिया कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं और हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) अल्लाह के रसूल हैं। इस तरह ख़ालिद बिन सईद भी मुसलमान हो गए। जब उनके बाप ने सुना तो बहुत नाराज़ हुए। मारा-पीटा, भूखा रखा, घर में क़ैद कर दिया, लेकिन सब बेकार। ख़ालिद (रज़ि.) इस्लाम से न फिरे और फिर जब प्यारे नबी (सल्ल.) ने

मुसलमानों को हबशा जाने का हुक्म दिया तो वे भी हबशा चले गए।

एक और समझदार नौजवान हज़रत तलहा (रज़ि.) का क़िस्सा सुनिए। उनकी उम्र 17-18 साल की थी। तिजारत का पेशा करते थे। एक बार तिजारत का माल लेकर बसरा गए। वहाँ अपना माल बेचा। वहीं एक ईसाई विद्वान से मुलाक़ात हो गई। वह ख़ुदा की किताब तौरात, ज़बूर और इनजील का बहुत बड़ा आलिम था। जब उसे यह मालूम हुआ कि तलहा मक्का के रहनेवाले हैं तो उसने कहा कि अल्लाह की किताबें पढ़ने के बाद मैं यह पूरे यक़ीन के साथ कहता हूँ कि तुम्हारे शहर में अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) जो दीन (धर्म) फैला रहे हैं वह सच्चा दीन है।

अब देखिए, तलहा वापस मक्का आए तो अपने दोस्त हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) से मिले और पादरी की बात सुनाई। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने कहा, "उसने ठीक कहा। आओ, मेरे साथ नबी (सल्ल.) के पास चलो।" वे साथ हो लिए। नबी (सल्ल.) की सेवा में पहुँचे। इस्लाम की बातें सुनीं और मुसलमान हो गए। हज़रत तलहा के मुसलमान होने की ख़बर उनके बड़े भाई ने सुनी तो वह बहुत नाराज़ हुआ। उसने तलहा (रज़ि.) को पकड़ा और फिर हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) को भी पकड़ लाया, दोनों को मज़बूत रस्सी से कसकर बाँधकर ख़ूब पीटा, लेकिन उसका पीटना और ज़ुल्म करना सब बेकार हो गया। हज़रत तलहा (रज़ि.) इस्लाम से न फिरे।

देखा आपने हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) नौजवानों में दीन फैलाने का काम कैसी अच्छी तरह करते थे! वे और उनके दोस्त-यार कैसे सच्चे मुसलमान थे! इन दो उदाहरणों से आप समझ लीजिए कि हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने किस-किस तरह नौजवानों में दीन फैलाया होगा। अब आगे सुनिए–

बड़े घरानों के अलावा बड़े घरानों में बहुत-से ग़ुलाम और लौंडियाँ यानी औरतें और मर्द ऐसे थे कि जब सच्चा दीन (इस्लाम) उनकी समझ में आ गया तो वे भी मुसलमान हो गए। ज़रा सोचिए तो, जब मक्का के सरदार अपने बेटों पर ज़ुल्म कर सकते थे तो भला ये सब तो लौंडी-ग़ुलाम थे। इनपर तो बहुत

ही ज़ुल्म करते थे। इन्हें तो इस-इस तरह सताते थे कि देखनेवालों के रोंगटे खड़े हो जाते थे। किसी को तो बाँधकर अरब की तपती रेत पर दोपहर के वक़्त लिटा देते और ऊपर से पत्थर रख देते ताकि हिल न सकें। दोपहर के वक़्त रेत गर्म होकर आग की तरह जलती थी और पत्थरों के नीचे दबे हुए ग़ुलाम बेचारे तड़पते और कुछ न कर पाते। इतना ही नहीं ऊपर से कोड़ों की मार भी सहते। कुछ ज़ालिम तो ऐसे थे कि उन्हें आग के अंगारों पर लिटा देते। कुछ ऐसे थे जो अपने ग़ुलामों को मुसलमान होने की वजह से पानी में डुबकियाँ देते और इस तरह बेदम कर देते।

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) बड़े नर्म-दिल आदमी थे। उनसे यह ज़ुल्म देखा न गया। वे जाकर ग़ुलामों और लौंडियों के मालिकों से मिलते और उनसे कहते कि जब ये लोग तुम्हारा कहना नहीं मानते तो इन्हें दूसरों के हाथ बेच दो वे लोग जवाब देते कि तुम ही ख़रीद लो। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) उनका यह जवाब सुनते तो अधिक से अधिक दाम देकर ऐसे ग़ुलामों और लौंडियों को ख़रीद लेते और उन्हें आज़ाद कर देते। मक्का के सरदारों को जब यह मालूम हुआ कि अबू बक्र (रज़ि.) ऐसे लोगों को ख़रीद लेते हैं तो उन्होंने बड़ी-बड़ी रक़में हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) से वुसूल कीं। मुसलमान होने से पहले हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) के पास चालीस हज़ार की रक़म थी। लौंडियों और ग़ुलामों को आज़ाद कराने में तीस हज़ार ख़र्च हो गए। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने ख़ुशी-ख़ुशी अल्लाह को राज़ी करने के लिए यह रक़म ख़र्च कर दी। जब हज़रत बिलाल (रज़ि.) को इसी तरह मुसीबतों से छुटकारा दिलाया तो नबी (सल्ल.) ने कहा, ''अबू बक्र! तुमने यह बड़ा उमदा माल ख़रीदा, मुझे भी इसमें शामिल कर लो।'' हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने कहा: ''ऐ अल्लाह के रसूल! मैंने तो बिलाल को आज़ाद कर दिया।'' यह सुनकर नबी (सल्ल.) बहुत ख़ुश हुए। नबी (सल्ल.) के ख़ुश होने से अबू बक्र (रज़ि.) भी ख़ुश हुए। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) की यही बात तो बड़ी प्यारी थी कि वे नबी (सल्ल.) के ख़ुश होने से ख़ुश होते और जब नबी (सल्ल.) को उदास देखते तो ख़ुद भी उदास हो जाते।

ख़ुद उनपर ज़ुल्म

अल्लाह के रसूल (सल्ल.) के साथ मिलकर हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने इस तरह तन-मन-धन से कोशिश की तो कुछ दिनों में लगभग उन्तालीस (39) मर्द, औरतें और नौजवान मुसलमान हो गए। यह देखकर एक दिन अपने आप हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) के दिल में उत्साह हुआ कि मक्का के क़ुरैश काबा में रोज़ इकट्ठा होते हैं। उनके जलसे में जाकर तक़रीर करनी चाहिए। दिल की इस बात को नबी (सल्ल.) से कहा और इजाज़त माँगी। नबी (सल्ल.) ने सुना तो कहा, "अभी हम कम हैं।" नबी (सल्ल.) की इस बात का मतलब यह था कि मक्कावाले अधिक हैं, वे हमसे नाराज़ हैं, मुसलमानों पर बुरी तरह ज़ुल्म करते हैं। अगर वे हल्ला बोल देंगे तो न जाने तुम्हारे साथ क्या व्यवहार हो। लेकिन हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) का जोश बहुत बढ़ा हुआ था। फिर इजाज़त माँगी और फिर इजाज़त माँगी। तीसरी बार हुज़ूर (सल्ल.) ने इजाज़त दे दी। अब हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) मक्का के सरदारों की भीड़ में पहुँचे और तक़रीर करने लगे। क़ुरैश ने देखा और तक़रीर सुनी तो ग़ुस्से से आगबगूला हो गए। झपटे और अबू बक्र (रज़ि.) पर पिल पड़े। इतना मारा, इतना मारा कि सारा बदन लहूलुहान कर दिया। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) बेहोश होकर गिर पड़े तो क़ुरैश को ध्यान आया कि कहीं ऐसा न हो कि अबू बक्र (रज़ि.) मर जाएँ और उनके घरवाले, जो मुसलमान न सही, फिर भी बदला लेने पर उतर आएँ और हम सब आपस में लड़ पड़ें। वे सब चुपके-चुपके वहाँ से खिसक गए। किसी ने आपके घरवालों के लोगों को ख़बर कर दी। वे सब दौड़े, लेकिन वहाँ से मक्का के सरदार जा चुके थे। वे लोग उन्हें उठाकर घर लाए। हालत इतनी ख़राब थी कि बचने की उम्मीद न थी। घरवालों ने होश में लाने की तरकीब शुरू कर दी। जब होश आया तो बाप (अबू क़हाफ़ा) ने हाल पूछा। अब यहाँ प्यारे रसूल (सल्ल.) से मुहब्बत का हाल देखिए। अबू बक्र (रज़ि.) ने अपना हाल तो न बताया, बल्कि पूछने लगे, "रसूल (सल्ल.) का क्या हाल है?" बाप ने यह सुना तो ग़ुस्से के मारे उठकर चले गए। उस वक़्त मुसलमान नहीं हुए थे। लेकिन माँ का दिल तो अल्लाह ने ऐसा बनाया है कि वह बेटे पर हर तरह से मेहरबान

रहती है, फिर हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) की माँ "उम्मुल ख़ैर" थीं भी बड़ी अच्छी और समझदार। वे बेटे के पास आईं। कहने लगीं, "बेटा! लो यह दवा पी लो, दर्द कम हो जाएगा। लो खाना खा लो, कुछ ताक़त आ जाएगी।" लेकिन अबू बक्र (रज़ि.) की सिर्फ़ एक रट थी, "प्यारे रसूल कैसे हैं? उनका हाल बताओ, मुझे प्यारे रसूल के पास ले चलो।" अल्लाहु अकबर, कैसी मुहब्बत थी नबी (सल्ल.) से। अपनी तो जान पर बनी हुई है, लेकिन कोई परवाह नहीं, परवाह है तो सिर्फ़ यह कि प्यारे रसूल (सल्ल.) पर आँच न आए।

उम्मुल ख़ैर ने कहा, "बेटे, ख़ुदा की क़सम! मुझे कुछ नहीं मालूम।" यह सुनकर कहने लगे, अम्मी जान ! आप ख़त्ताब की बेटी उम्मे जमील के पास जाएँ, वे नबी (सल्ल.) का हाल बता देंगी।" बेचारी बेटे की मुहब्बत में दौड़ी हुई उम्मे जमील के पास गईं, उनसे कहा, "मेरे बेटे अबू बक्र ने मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह की ख़ैरियत पूछी है।"

उम्मुल ख़ैर से यह सुना तो उम्मे जमील सोच में पड़ गईं। मुसलमान हो चुकी थीं, लेकिन लोगों को मालूम न था। वे कुछ डरीं कि अगर नबी (सल्ल.) के बारे में कुछ कहेंगी तो उम्मुल ख़ैर को पता चल जाएगा। उन्होंने जवाब दिया, "मैं कुछ नहीं कह सकती। हाँ, तुम चाहो तो मैं तुम्हारे घर चलकर तुम्हारे बेटे को देख आऊँ।"

उम्मुल ख़ैर ने उन्हें साथ लिया। अपने घर ले गईं। वहाँ अबू बक्र (रज़ि.) ज़ख़्मी हालत में पड़े थे। उम्मे जमील ने जब हज़रत अबू बक्र को देखा तो उनसे रहा न गया और चीख़ पड़ीं। उनके मुँह से निकल गया, "जिन लोगों ने आप पर यह ज़ुल्म किया है, वे सब इस्लाम के कट्टर दुश्मन हैं। मैं पूरे यक़ीन के साथ कहती हूँ कि अल्लाह तआला उनसे पूरा-पूरा बदला लेगा।"

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने उनसे कहा, "अच्छा, पहले तुम यह बताओ कि इस्लाम के दुश्मनों ने नबी (सल्ल.) के साथ कोई बेअदबी तो नहीं की?" उम्मे जमील ने धीरे से कहा, "आपकी माँ सुन रही हैं।" बोले, "डरो नहीं, बताओ।" तब उन्होंने बताया कि प्यारे रसूल (सल्ल.) ख़ैरियत से हैं और वे ज़ैद बिन अरक़म के घर में हैं।

यह सुनकर हज़रत अबू बक्र(रज़ि.) ने माँ से कहा, "ख़ुदा की क़सम! मैं उस व़क्त तक खाना नहीं खाऊँगा जब तक तुम मुझे नबी (सल्ल.) के पास न ले चलोगी।" यह सुनकर माँ राज़ी हो गईं। उम्मे जमील को घर पर ही रोक लिया, जब रात के समय लोग घरों में सो गए और चारों तरफ़ सन्नाटा छा गया तो उम्मे जमील और उम्मुल ख़ैर ने उनहें सहारा देकर उठाया। और ज़ैद बिन अरक़म के घर की ओर चलीं। तक्लीफ़ की वजह से हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) से चला नहीं जाता था, लेकिन प्यारे रसूल (सल्ल.) की मुहब्बत में न जाने कहाँ से पैरों में इतनी ताक़त आ गई कि किसी-न-किसी तरह मुहम्मद (सल्ल.) तक पहुँच ही गए! नबी (सल्ल.) के पास पहुँचकर हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) खड़े न रह सके और ज़मीन पर गिर पड़े। यह हाल देखकर नबी (सल्ल.) का दिल भर आया। आप अपने प्यारे साथी पर झुक गए। माथा चूम लिया। उस समय सभी सहाबा (रज़ि.) वहाँ मौजूद थे। वे सब यह हाल देखकर रोने लगे।

नबी (सल्ल.) के पास पहुँचकर हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने न किसी की शिकायत की और न ही किसी को बुरा कहा, बल्कि सोचा कि इस समय मेरी माँ नबी (सल्ल.) के पास हैं। अगर आप (सल्ल.) उन्हें समझाएँ और दुआ करें तो अल्लाह आपकी दुआ क़बूल करेगा और मेरी माँ ज़रूर मुसलमान हो जाएँगी। इसलिए नबी से गुज़ारिश करने लगे, "ऐ अल्लाह के रसूल! उम्मे जमील के साथ ये मेरी माँ हैं। ये मुझसे बहुत मुहब्बत करती हैं, लेकिन अभी तक मुसलमान नहीं हुई हैं। आपकी ज़ात बरकतवाली है। आप अल्लाह से दुआ करें कि ये जहन्नम की आग से बच जाएँ।"

वाह! कितने अच्छे बेटे थे हज़रत अबू बक्र (रज़ि.)! इस हाल में भी प्यारी माँ को जहन्नम की आग से बचाने की धुन में हैं। नबी (सल्ल.) भला अपने प्यारे साथी की बात क्यों न मानते। आप तो अल्लाह के बन्दों को उसके अज़ाब से बचाने के लिए ही इस्लाम फैला रहे थे। आपने दुआ के लिए हाथ उठा दिए। आपके दुआ करते ही उम्मुल ख़ैर के दिल से कुफ़्र की गन्दगी धुल गई और वह उसी वक़्त मुसलमान हो गईं।

इस्लाम के लिए इस तरह की तकलीफ़ें उठाते-उठाते वह वक़्त भी

आया जब नबी (सल्ल.) ने मुसलमानों को हुक्म दिया कि यहाँ के ज़ुल्म से बचने और अपने ईमान को बचाने के लिए जो चाहे वह हबशा चला जाए। बहुत-से मुसलमान हबशा चले गए। अब हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) का हाल सुनिए।

हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) जब क़ुरआन पढ़ते तो आपके आँसू निकल आते। आपको क़ुरआन पढ़ते पास-पड़ोस के लोग, बच्चे, नौजवान, लड़के-लड़कियाँ सभी सुनते। उनपर असर पड़ता। फिर वे इकट्ठा हो जाते और ध्यान से सुनने लगते। क़ुरैश यह देखकर घबराते कि कहीं ऐसा न हो कि ये सब मुसलमान हो जाएँ। उन्होंने हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) का क़ुरआन पढ़ना और घर में रहना दूभर कर दिया। जब वे घर में होते और क़ुरआन पढ़ते तो वे बड़ी बदतमीज़ियाँ करते। यह देखकर हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) के दिल में ख़याल आया कि हबशा चले जाएँ। वे हबशा की तरफ़ चले, रास्ते में मक्का का एक रईस इब्ने दुग़ना मिला। उसने कहा, "अबू बक्र! कहाँ जा रहे हो?" उन्होंने बताया कि हबशा जा रहा हूँ। उसने फिर पूछा, "क्यों जा रहे हो?" आपने कहा, "मेरी क़ौमवालों ने मुझे घर छोड़ने पर मजबूर कर दिया है। मैं चाहता हूँ कि किसी जगह जाकर अपने रब की याद में लग जाऊँ।"

इब्ने दुग़ना अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) को अच्छी तरह जानता था। उसको इस बात का बड़ा दुख हुआ कि ऐसा अच्छा आदमी मक्का से चला जाए। उसने कहा, "तुम मुहताजों और ग़रीबों की मदद करते हो, अपने रिश्ते और नाते के लोगों का हक़ देते हो, मेहमानों की ख़िदमत करते हो, मुसीबत के मारों का साथ देते हो। फिर तुम तो मक्का के एक समझदार, नेक और बड़े शरीफ़ आदमी हो। तुम्हारे जैसे आदमी का मक्का से चले जाना मैं अच्छा नहीं समझता। तुम मेरे साथ वापस चलो। अपने शहर में चलकर अपने रब की इबादत करो। मैं तुम्हारा साथ दूँगा।"

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) उसके समझाने पर वापस लौट आए। इब्ने दुग़ना ने मक्का के सरदारों से कहा, "अबू बक्र घर छोड़कर कहीं नहीं जा सकते

और न ही उनको कोई व्यक्ति घर और शहर छोड़ने पर मजबूर कर सकता है। तुमपर अफ़सोस है कि तुम ऐसे आदमी को निकालते हो जो मुहताजों की मदद करता है, रिश्तेदारों का हक़ अदा करता है, लोगों से अच्छा बरताव करता है, दुख में सबके काम आता है, दूसरों का बोझ उठाता है और जो तुममें से किसी से कम नहीं। वह एक शरीफ़ आदमी है, और समझदार ऐसा कि तुम उसके फ़ैसलों को माना करते हो। क्या तुम ऐसे आदमी को यहाँ से निकालकर अपने आप को ज़लील करोगे?।"

इब्ने दुग़ना ने जो कुछ कहा, सच कहा था। वह बा-असर आदमी भी था। लोगों ने कहा, "बात यह है कि वे ज़ोर-ज़ोर से क़ुरआन पढ़ते हैं, हमारे बच्चे सुनते हैं, हमें यह डर है कि कहीं हमारे बच्चे भी क़ुरआन सुनकर अपने दीन से न हट जाएँ। तुम अबू बक्र से कहो कि वे अपने मकान के अन्दर अपने रब की इबादत करें और वहीं जो चाहे करें। नमाज़ें पढ़ें, मगर हमें परेशान न करें। खुल्लम-खुल्ला उस काम को न करें जो करते हैं और न ही ज़ोर-ज़ोर से क़ुरआन पढ़ें।

इब्ने दुग़ना ने कहा, " अच्छा जो तुम चाहते हो, वे ऐसा ही करेंगे।" इब्ने दुग़ना यह कहकर चला गया। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने दो चार दिन इसी तरह ख़ामोशी से इबादत की लेकिन उन्हें तस्कीन न हुई, वे फिर पहले की तरह ऊँची आवाज़ से क़ुरआन पढ़ने लगे। दुश्मनों ने सुना तो इब्ने दुग़ना को बुला लाए और कहा कि देखो, अबू बक्र शर्त के ख़िलाफ़ करते हैं। इब्ने दुग़ना ने अबू बक्र (रज़ि.) से कहा, "तुमको मालूम है कि क़ुरैश से मैंने यह कहा है कि तुम क़ुरआन ऊँची आवाज़ से नहीं पढ़ोगे। तुम या तो मेरी बात मानो या फिर मैं कह दूँगा कि मैंने अबू बक्र का साथ छोड़ दिया।"

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने जवाब दिया, "तुम शौक़ से मेरा साथ छोड़ दो। अल्लाह मेरे साथ है और वही मेरे लिए काफ़ी है। मैं अल्लाह की पनाह में ख़ुश और राज़ी हूँ।" इब्ने दुग़ना यह सुनकर चला गया।

प्यारे रसूल (सल्ल.) का साथ देना

हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) प्यारे रसूल (सल्ल.) के बड़े अच्छे साथी थे। उन्होंने प्यारे रसूल (सल्ल.) का साथ देने में कोई कसर न उठा रखी थी। तन-मन-धन से आप (सल्ल.) का साथ दिया। बात-बात में आप (सल्ल.) की तरफ़दारी करते। नबी (सल्ल.) की हर बात की तसदीक़ (पुष्टि) करते और कहते कि ऐ लोगो! नबी (सल्ल.) जो कुछ कहते हैं ठीक कहते हैं। आप (सल्ल.) की यह बात बिलकुल सच है, और यह बात भी बिलकुल सच है कि आप (सल्ल.) अल्लाह के रसूल हैं।

नबी (सल्ल.) की बातों की पुष्टि करने के बारे में सर्वोत्तम बात वह है जो मेराज के समय हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने कही। नबी (सल्ल.) को रजब के महीने में मेराज हुई थी। अल्लाह तआला ने रातों-रात नबी (सल्ल.) को आसमानों की सैर कराई। जन्नत और दोज़ख दिखाई और बहुत-सी वे हक़ीक़तें दिखाईं जो अल्लाह दिखाना चाहता था और फिर रातों-रात ही ज़मीन पर भेज दिया। सुबह को नबी (सल्ल.) ने मेराज का हाल लोगों से कहा। मक्का के सरदारों ने सुना तो आप (सल्ल.) के आस-पास एकत्र हो गए और आप (सल्ल.) की हँसी उड़ाने लगे। तौबा तौबा! कहने लगे कि अब तो इनका दिमाग़ बिलकुल चल गया है। मक्का के सरदारों में से अबू जहल तो आप (सल्ल.) के पीछे ही पड़ा रहता था। उसने सोचा कि मुहम्मद के सबसे बड़े साथी अबू बक्र हैं। वे हर बात में मुहम्मद की तरफ़दारी करते हैं। चलो, उनसे कहें कि भला ऐसा भी हो सकता है कि कोई रातों-रात आसमान की सैर करके चला आए। उसने सोचा था कि अबू बक्र इस बात से अवश्य इनकार करेंगे और जब वे इनकार कर देंगे तो फिर मुहम्मद का साथ देनेवाला कोई न रह जाएगा।

यह सोचकर वह दौड़ा-दौड़ा अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) के पास पहुँचा। बोला, "अरे भाई सुनना तो, क्या ऐसा भी हो सकता है कि कोई आदमी रातों-रात आसमानों की सैर कर आए?" अबू बक्र (रज़ि.) ने उत्तर दिया कि "ऐसा नहीं हो सकता।" अब अबू जहल ने बताया कि तुम्हारे नबी कहते हैं कि आज रात उन्हें इसी तरह मेराज हुई। जब अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) ने यह सुना

तो झट बोल उठे कि अगर नबी (सल्ल.) कहते हैं तो बिलकुल ठीक है। मैं तो उनकी बातों की हर समय तसदीक़ करता हूँ। अल्लाह के लिए यह कुछ भी कठिन और असंभव नहीं है। वह सब कुछ कर सकता है। अल्लाह ने अवश्य ही अपने रसूल को आसमानों की सैर कराई होगी।

यह सुनकर अबू जहल अपना-सा मुँह लेकर रह गया। इसके बाद हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) नबी (सल्ल.) के पास आए। यहाँ लोग आप (सल्ल.) की हँसी उड़ा रहे थे। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने आते ही कहा -- "ठहरो!" फिर बोले– "मैंने बैतुल-मक़दिस देखा है। अच्छा हुज़ूर! आप बताइए कि बैतुल-मक़दिस के कितने दरवाज़े हैं और कौन-सा दरवाज़ा किस तरफ़ है?" नबी (सल्ल.) ने सब ठीक-ठीक बता दिया तो अबू बक्र (रज़ि.) ने ऊँची आवाज़ से एलान कर दिया कि नबी (सल्ल.) जो कुछ कहते हैं बिलकुल ठीक कहते हैं। आप अल्लाह के रसूल हैं। अल्लाह ने आपको यह गौरव प्रदान किया और सचमुच आप (सल्ल.) को मेराज हुई।

इस्लाम के दुश्मनों ने सोचा था कि आज मुसलमान मुहम्मद (सल्ल.) का इनकार कर देंगे, आप (सल्ल.) की बात झुठला देंगे और आप (सल्ल.) का साथ छोड़ देंगे, लेकिन अबू बक्र (रज़ि.) की तसदीक़ करने से उन सबकी बात धरी-की-धरी रह गई। नबी (सल्ल.) ने ख़ुश होकर उस दिन अबू बक्र (रज़ि.) को 'सिद्दीक़' की उपाधि दी, यानी सबसे बड़ा तसदीक़ (पुष्टि) करनेवाला। इसलिए मुसलमान आपको हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ कहते हैं।

इस तरह की बात जहाँ कहीं भी आती प्यारे नबी (सल्ल.) के साथी हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) अपनी ज़बान की पूरी ताक़त से आप (सल्ल.) की तरफ़दारी करते। और जब कहीं ऐसा मौक़ा होता कि मक्का के सरदार नबी (सल्ल.) के साथ बेअदबी करते, आप (सल्ल.) को सताते तो जैसे ही अबू बक्र (रज़ि.) सुनते दौड़कर आते और आप (सल्ल.) की मदद करते। जान पर खेलकर आप (सल्ल.) को बचाते। ऐसा भी होता कि नबी (सल्ल.) को बचाने में उनको भी चोटें आ जातीं।

एक दिन की बात है, प्यारे नबी (सल्ल.) काबा में नमाज़ पढ़ रहे थे।

इतने में एक काफ़िर आया। उसका नाम उक़बा था। उसने नबी (सल्ल.) को नमाज़ पढ़ते देखा तो अपनी चादर नबी (सल्ल.) के गले में डाली और फंदा देकर खींचने लगा उस समय वहाँ और बहुत-से दुश्मन थे। वे सब देख-देखकर ख़ुश हो रहे थे और उक़बा को शाबाशी देते हुए कहते कि ज़रा और कस के खींच।

यह बात किसी ने जाकर अबू बक्र (रज़ि.) से कही। वे कोई ज़रूरी काम कर रहे थे। सुनते ही सब कुछ छोड़-छाड़ कर दौड़ पड़े। काबा में पहुँचे। पहुँचते ही उक़बा को धक्का देकर हटा दिया। चादर का फंदा खोला और मक्का के सरदारों से कहा, ''तुम उस शख़्स की जान लेने पर तुले हुए हो जो कहता है कि मेरा रब अल्लाह है। तुम सब जानते हो कि वह अल्लाह की तरफ़ से सच्ची निशानियाँ लेकर आया है।''

ऐसे समय में प्यारे नबी (सल्ल.) की इस तरह मदद करना आसान काम न था। मक्का के बड़े-बड़े सरदार वहाँ मौजूद थे। हो सकता था कि वे अबू बक्र (रज़ि.) पर पिल पड़ते। लेकिन उस समय अबू बक्र (रज़ि.) ने जो नबी (सल्ल.) की मदद की तो देखनेवालों को बड़ा ताज्जुब हुआ। किसी ने पूछा, ''यह कौन है जिसने अपनी जान की परवाह नहीं की और मुहम्मद (सल्ल.) की मदद को आ गया?'' उनमें से किसी ने बताया कि ये अबू बक्र हैं।

इसी तरह के एक दूसरे मौक़े पर अबू बक्र (रज़ि.) पिट भी गए। ऐसा हुआ कि एक दिन मक्का के क़ुरैश ने नबी (सल्ल.) को छेड़कर बुतों के बारे में पूछा कि इन बुतों के बारे में आप क्या कहते हैं? नबी (सल्ल.) हमेशा सही और साफ़ बात कह दिया करते थे। आपने क़ुरैश के सरदारों के पूछने पर साफ़-साफ़ कह दिया कि ये पत्थर की मूर्तियाँ हैं और इस के सिवा कुछ भी नहीं। नबी (सल्ल.) से यह सुनते ही क़ुरैश आप (सल्ल.) से लिपट गए और मार-पीट शुरू कर दी। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) को पता चला तो भागे-भागे आए। आते ही बीच में कूद पड़े। दुश्मन नबी (सल्ल.) को छोड़कर हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) पर पिल पड़े, फिर इतना मारा कि हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) घर आकर जब सिर पर हाथ फेरते तो सिर के बाल हाथ में आ जाते।

इसी तरह का आँखों देखा हाल हज़रत अली (रज़ि.) बयान करते थे। हज़रत अली (रज़ि.) कहते हैं कि एक दिन मैंने देखा कि मक्का के क़ुरैश ने नबी (सल्ल.) को घेर लिया। उनमें से कोई आप (सल्ल.) को धक्का दे रहा था, कोई पकड़कर अपनी तरफ़ खींचता था और सब ग़ुस्से में यह कह रहे थे कि तू वही है ना जिसने हमारे ख़ुदाओं को न माना और एक ख़ुदा को मानता है!

हज़रत अली (रज़ि.) कहते हैं कि उस समय नबी (सल्ल.) इस बुरी तरह फँसे हुए थे कि हममें से किसी की हिम्मत नहीं हुई कि आप (सल्ल.) की मदद को पहुँचते, लेकिन अबू बक्र (रज़ि.) से देखा न गया। वे आगे बढ़े और भीड़ में घुस गए। किसी को धक्का दिया, किसी को मारा, किसी को पीछे हटाया। अबू बक्र (रज़ि.) ये सब करते जाते और कहते जाते, "कम नसीबो! तुम ऐसे शख़्स को क़त्ल किए देते हो जो कहता है कि मेरा रब अल्लाह है।" यह वाक़िआ बयान करके हज़रत अली (रज़ि.) से न रहा गया और वे रोने लगे। इतना रोए कि दाढ़ी आँसुओं से भीग गई। इसके बाद अबू बक्र (रज़ि.) की बड़ाई बयान की, उनकी बहादुरी की प्रशंसा की और कहा कि प्यारे रसूल (सल्ल.) पर जान न्यौछावर करने में अबू बक्र (रज़ि.) सबसे आगे रहे हैं।

हिजरत[1] में प्यारे रसूल (सल्ल.) का साथ

प्यारे रसूल (सल्ल.) बारह साल तक मक्कावालों को अल्लाह का पैग़ाम पहुँचाते रहे, दीने इस्लाम समझाते रहे, क़ुरआन पढ़-पढ़कर सुनाते रहे और इस्लाम की तरफ़ बुलाते रहे। बारह वर्षों में जो लोग मुसलमान हो गए थे उनको मक्का के क़ुरैश सताते रहे। उनपर ज़ुल्म और अत्याचार करते रहे। जब उनका सताना हद से बढ़ गया तो अल्लाह की तरफ़ हिजरत का आदेश आया। अल्लाह तआला ने नबी (सल्ल.) को आदेश दिया कि मक्का से मदीना हिजरत कर जाएँ। नबी (सल्ल.) ने यह आदेश मुसलमानों को सुना दिया। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने जब यह आदेश सुना तो हिजरत की तैयारियाँ करने लगे। मक्का से मदीना डेढ़ सौ मील से अधिक दूर है। उस ज़माने में लोग पैदल और ऊँटों पर मक्का से मदीना जाया करते थे। रास्ता तय करने में कई दिन लगते थे।

1. अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल.) का मक्का से मदीना जाना।

हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) ने चार ऊँटनियाँ मक्का से मदीना जाने के लिए अलग कर लीं। उन्हें ख़ूब अच्छी तरह खिलाने-पिलाने लगे। उनको ताक़तवर और तगड़ा बनाने के उपाय करने लगे। मुसलमानों ने यह आदेश सुना तो वे मक्का को छोड़कर मदीना की तरफ़ जाने लगे। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) दिल ही दिल में यह सोच रहे थे कि प्यारे नबी (सल्ल.) के साथ जाएँ तो सफ़र में आप (सल्ल.) की सेवा का ज़्यादा अवसर मिलेगा। वे अल्लाह से यही दुआ भी करते थे।

हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) इसी सोच में रहे। इस तरह कई महीने हो गए। लगभग सारे मुसलमान मक्का से निकलकर मदीना पहुँच गए। यह बात मक्का के सरदारों को मालूम हुई तो वे यह सोचने लगे कि अगर मुहम्मद (सल्ल.) मक्का से मदीना चले गए और वहाँ के लोग भी मुसलमान हो गए तो उनकी ताक़त और भी बढ़ जाएगी। इसलिए (तौबा, तौबा!) मुहम्मद को क़त्ल कर डालना चाहिए। उन्होंने आपस में सलाह-मशविरा किया और नबी (सल्ल.) को क़त्ल करने के लिए एक दिन निश्चित कर लिया। यह भी निश्चित हुआ कि रात को नबी (सल्ल.) का घर घेरे रहेंगे और सुबह को जब आप (सल्ल.) घर से निकलेंगे तो क़त्ल कर देंगे।

एक मज़े की बात और सुनिए। जिस रात के लिए मक्कावालों ने यह निश्चय किया था कि नबी (सल्ल.) का घर घेरे रहेंगे, उसी रात के लिए अल्लाह का आदेश था कि घर से निकलकर मदीना की राह लें। नबी (सल्ल.) ने जाकर अपने प्यारे साथी हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) से कहा कि मेरे लिए भी हिजरत का आदेश आ गया। यह सुनकर हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने नबी (सल्ल.) से पूछा कि क्या मुझे भी साथ ले चलेंगे? जवाब मिला, "ज़रूर, ज़रूर।" इतना सुनकर हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ख़ुश हो गए और कहने लगे कि मैंने इसी दिन के लिए चार ऊँटनियाँ अलग कर ली थीं। अब ये चारों ख़ूब ताक़तवर हो गई हैं। इन्हीं पर चलेंगे। इसके बाद अपनी बड़ी बेटी हज़रत असमा (रज़ि.), अपने बेटे अब्दुल्लाह और अपने ग़ुलाम आमिर बिन फ़ुहैरा को आदेश दिया कि सामान ठीक करना शुरू करें। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) के घर के ये तीनों व्यक्ति मुसलमान हो चुके थे और दिलो-जान से अल्लाह के रसूल

(सल्ल.) पर न्यौछावर होने के लिए तैयार रहते थे।

हिजरत की रात मक्कावालों ने नबी (सल्ल.) का घर घेर रखा था, लेकिन नबी (सल्ल.) अल्लाह के आदेश से निकले तो दुश्मन आपको देख न सके। नबी (सल्ल.) घर से निकलकर सीधे अबू बक्र (रज़ि.) के घर पहुँचे। वहाँ सारा सामान ठीक-ठाक था। हज़रत असमा (रज़ि.) ने कई दिन का खाना तैयार करके अच्छी तरह बाँध दिया था। उसी वक़्त नबी (सल्ल.) हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) को लेकर रात को ही चल दिए। मक्का के क़रीब एक पहाड़ है। इस पहाड़ में एक ग़ार (गुफा) है। इस ग़ार को "ग़ारे सौर कहते हैं। हज़रत अबू बक्र ग़ार में पहले पहुँचे। ग़ार को अन्दर से साफ़ किया। फिर जब यह इतमीनान हो गया कि ग़ार में कोई जानवर या कीड़ा नहीं है तो आपने नबी (सल्ल.) को बुलाया। नबी (सल्ल.) अन्दर गए और अपने प्यारे साथी के साथ उसी में छिप गए।

अब मक्कावालों का हाल सुनिए। वहाँ जब सुबह हुई तो उन्होंने नबी (सल्ल.) को न पाया। समझ गए कि बचकर निकल गए। बस उसी समय एलान कर दिया कि जो व्यक्ति मुहम्मद को गिरफ़्तार करके लाएगा या उनका सिर लाएगा तो उसे सौ लाल ऊँट इनाम में दिए जाएँगे। अरब में उस समय लाल ऊँट बहुत क़ीमती होते थे। इनाम के लालच में दुश्मन नबी (सल्ल.) को खोजने निकल पड़े। वे मदीना के रास्तों पर भी गए और इधर-उधर भी ढूँढ़ना शुरू कर दिया। एक बार कुछ दुश्मन ग़ारे सौर के सामने आ खड़े हुए। अन्दर से हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने उन्हें देख लिया। आपने घबराकर नबी (सल्ल.) से कहा कि वे थोड़ा झुककर देखेंगे तो हमें पा लेंगे। नबी (सल्ल.) ने उत्तर दिया, "घबराओ नहीं, अल्लाह हमारे साथ है!"

अल्लाह की मेहरबानी थी। दुश्मन उसी जगह खड़े-खड़े इधर-उधर देखते रहे और चले गए। ग़ारे सौर में नबी (सल्ल.) तीन दिन-रात छिपे रहे। इन तीन दिनों में हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) के ग़ुलाम आमिर बिन फ़ुहैरा और प्यारी बेटी असमा दोनों भेड़-बकरियाँ लेकर चराने के बहाने से निकलते। खाना-पानी साथ होता। ग़ारे सौर के पास जाकर खाना-पानी नबी (सल्ल.) को दे आते।

फिर जब वापस आते तो अपने क़दमों के निशान मिटाते हुए आते, ताकि दुश्मनों को कुछ शक न हो जाए कि अभी-अभी कोई इस तरफ़ से गुज़रा है। ये दोनों तो यह करते। हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि.) बहुत समझदार थे। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने उनको यह काम सौंपा कि वे जाकर मक्कावालों में बैठें। उनकी बातें सुनें, और वे लोग जो राय-मशविरा करें उसे आकर बताया करें। अब्दुल्लाह (रज़ि.) प्रत्येक दिन की ख़बरें आकर बताते कि मक्कावाले ये सोच-विचार कर रहे हैं और आपको पकड़ने के लिए ऐसे-ऐसे इन्तिज़ाम और इनाम का एलान किया है। ग़ार में तीन दिन छिपे रहने के बाद चौथे दिन मदीना की तरफ़ जाना था। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने बेटी, बेटा और ग़ुलाम से कहा कि सामान और ऊँटनियाँ लेकर आओ। ये सारा सामान आ गया। एक ऊँटनी पर नबी (सल्ल.) सवार हुए और दूसरी पर हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) भी सवार हो गए। एक आदमी को मदीना का रास्ता बताने के लिए निश्चित किया। वह आदमी रास्ता बताता हुआ आगे-आगे चला। रास्ते में हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) को यह चिन्ता थी कि नबी (सल्ल.) को कोई तकलीफ़ न होने पाए। नबी (सल्ल.) को भूख लगती तो तुरन्त खाना पेश करते, प्यास लगती तो पानी लाकर देते और धूप होती तो सिर पर कपड़ा तान देते। जब तेज़ धूप हो जाती तो ठहरकर आराम करने की जगह खोजते और नबी (सल्ल.) के आराम का इन्तिज़ाम करते।

रास्ते में एक दिन सोचा कि कहीं दूध मिले तो प्यारे नबी (सल्ल.) को पिलाएँ। यह सोचकर एक जगह नबी (सल्ल.) को ठहराया और ख़ुद दूध के लिए इधर-उधर निगाहें दौड़ाने लगे। एक तरफ़ एक चरवाहा बकरियाँ चरा रहा था, तुरन्त उसके पास पहुँचे। उससे दूध लिया। उसे कपड़े से ढाँककर नबी (सल्ल.) के पास लाए। उसमें थोड़ा-सा पानी मिलाकर नबी (सल्ल.) को पिलाया। फिर शाम हुई तो वहाँ से आगे बढ़े।

अब सुनिए, मक्का में एक जवान था। उसका नाम था सुराक़ा। सुराक़ा बड़ा बहादुर आदमी था। साथ ही बड़ा लालची भी था। उसने भी मक्का के सरदारों का एलान सुना था कि जो मुहम्मद (सल्ल.) को पकड़कर लाएगा या उनका सिर लाएगा तो उसे सौ सुर्ख़ (लाल) ऊँट इनाम में मिलेंगे। इनाम के लालच में उसने तीर-कमान लिया, तलवार कमर से लटकाई, नेज़ा हाथ में

लिया, घोड़े पर सवार हुआ और नबी (सल्ल.) को खोजने चला। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उसने आप (सल्ल.) को देख लिया। घोड़ा दौड़ाकर नबी (सल्ल.) के पास पहुँचा। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने उसे देखा तो समझ गए कि दुश्मन है। नबी (सल्ल.) से बोले, "दुश्मन आ गया।" नबी (सल्ल.) ने जैसे सुना ही नहीं। आप (सल्ल.) ने कुछ ध्यान नहीं दिया। आप (सल्ल.) उस समय क़ुरआन की तिलावत कर रहे थे। सुराक़ा ने नबी (सल्ल.) पर हमला करना चाहा, तभी उसके घोड़े के पैर रेत में धँस गए। वह घोड़े से उतरा, और लगाम पकड़कर उसे खींचा। घोड़ा रेत से निकला। सुराक़ा फिर सवार हुआ और फिर हमला करना चाहा। उसका घोड़ा फिर ज़मीन में धँस गया। वह फिर उतरा और तीसरी बार भी जब ऐसा ही हुआ तो उसका दिल खटका। सोचने लगा कि मुहम्मद (सल्ल.) वास्तव में अल्लाह के रसूल हैं! उनके साथ दुश्मनी करना ठीक नहीं, बल्कि उनसे दोस्ती करनी चाहिए। यह सोचकर वह पास आया, इनामी एलान सुनाया, फिर लालच में पड़ने से सम्बन्धित अपना हाल बताया। इसके बाद माफ़ी माँगी। नबी (सल्ल.) ने माफ़ कर दिया। सुराक़ा मक्का लौट आया। अब कोई नबी (सल्ल.) को तलाश करने उधर जाता तो सुराक़ा उसे लौटा देता कि उधर तलाश करना बेकार है। मैं तो उसी तरफ़ से आ रहा हूँ।

नबी (सल्ल.) मदीना के रास्ते पर जा रहे थे। रास्ते में हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) के दामाद ज़ुबैर (रज़ि.) मिले। ज़ुबैर हज़रत असमा के शौहर थे वे शाम (सीरिया) की तरफ़ से आ रहे थे। वे वहाँ तिजारत के लिए गए थे। साथ में तिजारत का माल भी था। उन्होंने दोनों की सेवा में अच्छे-अच्छे कपड़े पेश किए। नबी (सल्ल.) ने ये कपड़े पसन्द किए, हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने नबी (सल्ल.) की राय देखी तो कपड़े रख लिए।

कई दिन बाद आप मदीना पहुँचे। मदीनावाले नबी (सल्ल.) के आने से बहुत ख़ुश हुए। आप (सल्ल.) को अपने-अपने घरों में ठहराने के लिए आपसे निवेदन करने लगे। लेकिन नबी (सल्ल.) हज़रत अबू अय्यूब अन्सारी (रज़ि.) के मकान पर ठहरे। हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) 'सुख़' के मक़ाम पर हज़रत ख़ारिजा (रज़ि.) के यहाँ ठहरे और कपड़े की तिजारत करने लगे। कुछ दिनों बाद उनके बेटे अब्दुल्लाह सबको लेकर मदीना आ गए थे। बाप अबू क़ुहाफ़ा

और एक बेटे अब्दुर्रहमान अभी तक मुसलमान नहीं हुए थे, वे दोनों मक्का में ही रहे।

मदीना आकर हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) और उनकी छोटी बेटी हज़रत आइशा (रज़ि.) दोनों बीमार पड़ गए। हज़रत आइशा (रज़ि.) की शादी हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने नबी (सल्ल.) के साथ मक्का में ही कर दी थी। उन दोनों की बीमारी इतनी बढ़ गई कि कोई दवा काम न करती थी। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने नबी (सल्ल.) से दुआ के लिए कहा।

इन दोनों के अलावा दूसरे लोग भी जो मक्का से हिजरत करके यहाँ आ गए थे, वे भी बीमार हो गए थे। कारण यह था कि मदीना की आबो हवा अच्छी न थी। नबी (सल्ल.) ने दुआ की। इस दुआ का नतीजा यह हुआ कि मदीना की आबो हवा (जलवायु) अच्छी हो गई। जो लोग बीमार पड़ गए थे वे भी अच्छे हो गए।

मदीना पहुँचकर प्यारे नबी (सल्ल.) ने एक मसजिद की बुनियाद डाली। मसजिद के लिए एक जगह पसन्द की। यह जगह दो यतीम बच्चों की थी। आप (सल्ल.) ने अधिक से अधिक मूल्य देकर वह ज़मीन ख़रीद ली। इस मसजिद के लिए रक़म हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने अपने पास से दी।

लड़ाइयाँ

प्यारे नबी (सल्ल.) और हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) मदीना पहुँचे तो नबी (सल्ल.) ने मदीना में इस्लामी हुकूमत की बुनियाद डाली। इस्लामी हुकूमत का अर्थ यह है कि अब यहाँ सारे फ़ैसले अल्लाह के हुक्मों के अनुसार हुआ करेंगे और नबी (सल्ल.) इन हुक्मों पर अमल करके दिखाएँगे। मदीना के लगभग सभी लोग मुसलमान हो चुके थे। इस्लामी हुकूमत बन जाने से वे सब बहुत ख़ुश हुए, लेकिन जब मक्का में यह ख़बर पहुँची कि मुहम्मद (सल्ल.) मदीना पहुँच गए और वहाँ इस्लामी हुकूमत क़ायम की है तो मक्कावालों को बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने सोचा कि अगर यह इस्लामी हुकूमत आगे चलकर मज़बूत हो गई तो हमारे लिए ख़तरा ही ख़तरा है। इसलिए जल्द से जल्द इसे

समाप्त कर देना चाहिए। यह सोचकर मक्कावालों ने मदीना पर हमला करने की तैयारी शुरू कर दी। उन्होंने लड़ाई के लिए एक हज़ार से अधिक बहादुरों को एकत्र कर लिया। उनके लिए तीर-कमान, नेज़े, तलवारें और लड़ाई के दूसरे सामान का इन्तिज़ाम किया। जब हर तरह के सामान से तैयार हो गए तो वे पूरी सुसज्जित सेना के साथ मदीना की तरफ़ बढ़े। प्यारे नबी (सल्ल.) को इन तैयारियों की सूचनाएँ मिलती रहती थीं। जब आपने यह सुना कि मक्कावाले लड़ने आ रहे हैं तो आपने भी अल्लाह के सिपाहियों को जमा किया। ये कुल तीन सौ तेरह (313) निकले। इनके पास लड़ाई के सामान बहुत कम थे। घोड़े न थे, नेज़े और तलवारें कम थीं। खाने-पीने का सामान भी बहुत कम था। लेकिन नबी (सल्ल.) अल्लाह के भरोसे पर आगे बढ़े। बद्र के मैदान में जाकर मक्कावालों को रोका। दोनों फ़ौजें आमने-सामने हुईं। और जब नबी (सल्ल.) ने मक्कावालों की फ़ौज को हथियारों से लैस और जंगी घोड़ों की क़तारें देखीं तो आप (सल्ल.) ने दुआ के लिए दोनों हाथ उठा दिए। आप (सल्ल.) ने इस तरह दुआ की –

> "ऐ अल्लाह! तूने मुझसे फ़त्ह का जो वादा किया है उसे आज पूरा कर दे। ऐ अल्लाह! मुझे वह फ़त्ह दे जिसका वादा मुझसे किया है। ऐ अल्लाह! मुसलमानों की यह छोटी-सी जमाअत अगर ख़त्म हो गई तो फिर सारी ज़मीन पर कभी तेरी इबादत न होगी।"

प्यारे नबी (सल्ल.) गिड़-गिड़ाकर यह दुआ माँग रहे थे। हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) आप (सल्ल.) के पीछे खड़े थे। वे मुहब्बत के कारण आपसे लिपट गए और बोले – "ऐ अल्लाह के रसूल! बस, अब आप परेशान न हों। अल्लाह अपने वादे को ज़रूर पूरा करेगा।"

हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) ने यह कहा ही था और नबी (सल्ल.) ने अभी दुआ ख़त्म भी न की थी कि हज़रत जिबरील (अलै.) ने आकर ख़ुशख़बरी सुनाई। अल्लाह का पैग़ाम (सन्देश) दिया कि "ऐ मेरे रसूल! (आज) मैं एक हज़ार ऐसे फ़रिश्तों से आपकी मदद करूँगा जो आगे-पीछे

लगातार उतरते रहेंगे। (इसलिए मुसलमानों की संख्या कम होने से न घबराओ) आज इस्लाम के दुश्मन हारेंगे और पीठ दिखाकर भागेंगे।''

यह ख़ुशख़बरी मुसलमानों को सुनाई गई। प्यारे रसूल (सल्ल.) के प्यारे साथियों ने आप (सल्ल.) के लिए एक जगह छोटा-सा छप्पर बना दिया था। आप (सल्ल.) उसमें गए और लड़ाई की व्यवस्था करने लगे। हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) नंगी तलवार लेकर आप (सल्ल.) की सुरक्षा के लिए खड़े हुए। लड़ाई शुरू हुई तो दुश्मनों का पूरा ज़ोर और दबाव नबी (सल्ल.) ही की तरफ़ था। वे बढ़-बढ़कर आपपर हमला करते। लेकिन हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) आगे बढ़कर उनको पीछे कर देते। इस लड़ाई में हज़रत अली (रज़ि.) और हज़रत हमज़ा (रज़ि.) ने मक्का के बड़े-बड़े सरदारों को मार गिराया था और बड़ी बहादुरी से लड़े थे, लेकिन हज़रत अली (रज़ि.) का कहना है कि अबू बक्र (रज़ि.) हम सबसे अधिक बहादुर थे। अक्सर ऐसा हुआ कि जब प्यारे रसूल (सल्ल.) के साथी इधर-उधर लड़ने में लगे हुए थे और नबी (सल्ल.) अकेले रह जाते, उस समय हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) अकेले दुश्मनों का मुक़ाबला करते और नबी (सल्ल.) को दुश्मनों के वार से बचाते थे।

इस लड़ाई में हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) को एक इमतिहान और देना पड़ा। उनके बहादुर बेटे अब्दुर्रहमान अभी तक मुसलमान नहीं हुए थे और इस्लाम के दुश्मनों की फ़ौज में थे। उसने एक बार मैदान में आकर पुकारा – ''कौन मुसलमान मुझसे मुक़ाबला करता है?'' अब्दुर्रहमान की इस बेअदबी पर हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) को बड़ा क्रोध आया। नबी (सल्ल.) से दरख़ास्त की कि इस बेअदब को सज़ा देने के लिए मुझे इजाज़त दी जाए। लेकिन नबी (सल्ल.) ने रोका और कहा कि तुम मेरे पास से न हटो और अपनी बहादुरी से मुझे लाभ पहुँचाओ।

बद्र के मैदान में घमासान युद्ध हुआ, लेकिन अल्लाह का वादा था कि विजय मुसलमानों की होगी। परिणाम यह हुआ कि दुश्मनों के बड़े-बड़े सत्तर (70) सरदार मारे गए। उनमें अबू जहल, उमैया बिन ख़ल्फ़ और उतबा जैसे लोग थे जो मक्का के रईस कहलाते थे। सत्तर (70) सरदार पकड़े भी गए।

सरदारों के मारे जाने और पकड़े जाने से दुश्मन भाग खड़े हुए और मुसलमानों को विजय प्राप्त हुई।

इस लड़ाई के बाद और बहुत-सी लड़ाइयाँ इस्लाम के दुश्मनों से हुईं। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) इसी तरह नबी (सल्ल.) के साथ रहे और अपनी जान ख़तरे में डालकर आप (सल्ल.) को बचाते रहे। एक लड़ाई में तो ऐसा हुआ कि बहुत-से मुसलमान घायल हो गए थे। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) को भी बहुत अधिक घाव लगे थे, लेकिन जब नबी (सल्ल.) ने पुकारा कि कौन क़ुरैश (मक्का के इस्लाम-दुश्मनों) का पीछा करेगा तो सत्तर (70) मुसलमानों ने उत्तर दिया, ''हम।'' इन सत्तर मुसलमानों में हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) भी थे।

एक और दिलचस्प और नसीहतवाला वाक़िआ सुनिए। एक लड़ाई जीतकर नबी (सल्ल.) वापस आ रहे थे। रास्ते में एक जगह ठहरे। नबी (सल्ल.) के साथ आपकी बीवी हज़रत आइशा (रज़ि.) भी थीं। जब वहाँ से चले तो हज़रत आइशा (रज़ि.) ने बताया कि मेरे गले का हार कहीं गिर गया। यह सुनकर नबी (सल्ल.) ने फिर पड़ाव डाल दिया। हार की खोज होने लगी। सारा दिन बीत गया। रात हो गई, नबी (सल्ल.) लेट गए और आप (सल्ल.) को नींद आ गई। मुसलमानों के पास पानी बहुत कम था। वह सब ख़त्म हो गया। अब बड़ी परेशानी हुई। प्यास किसी न किसी तरह रोकी जा सकती थी लेकिन वुज़ू के लिए क्या करें? हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) को बेटी (हज़रत आइशा) पर क्रोध आ गया। नबी (सल्ल.) के ख़ेमे में गए। नबी (सल्ल.) सो रहे थे, इसलिए धीरे-धीरे बेटी को डाँटने लगे कि तेरी वजह से ही सबको यह तकलीफ़ हुई। इस तरह डाँटते जाते और बेटी की कमर में कचोके मारते जाते।

सुबह को नबी (सल्ल.) जागे तो अल्लाह तआला का यह आदेश आया – ''अगर कहीं पानी न मिलता हो तो पाक मिट्टी से तयम्मुम कर लिया करो। इस तरह कि मिट्टी पर हाथों को मारो और अपने चेहरे और कोहनियों तक हाथों पर मल लो।'' अल्लाह का यह हुक्म आया तो प्यारे रसूल (सल्ल.) के सारे साथी बहुत ख़ुश हुए। सबने कहा कि वाह भाई वाह! अबू बक्र (रज़ि.) की औलाद भी कैसी अच्छी है कि उसकी ग़लती से हमें लाभ मिला।

एक और लड़ाई का क़िस्सा है। दुश्मन यह चाहते थे कि नबी (सल्ल.) से सुलह हो जाए। समझौते के लिए उन्होंने एक प्रसिद्ध अमीर और बहादुर व्यक्ति को नबी (सल्ल.) के पास भेजा। वह आप (सल्ल.) के पास आया और बातें करते-करते उसकी ज़बान से यह निकल गया –

"ऐ मुहम्मद! मैं तुम्हारे आस-पास ऐसे लोगों को देख रहा हूँ
जो समय पड़ने पर हमारे मुक़ाबले में ठहर नहीं सकते।"

उसकी इस बात पर हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) को गुस्सा आ गया। डाँटकर बोले – "ऐ अल्लाह के दुश्मन! क्या हम अल्लाह के रसूल का साथ छोड़ देंगे ?" उसने हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) की तरफ़ देखा और कुछ न कह सका। चुप होकर रह गया।

एक और मौक़े पर हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) ने घर का सारा सामान अल्लाह की राह में देकर प्यारे रसूल (सल्ल.) का साथ दिया। और यह तो सब जानते हैं कि प्यारे नबी (सल्ल.) का साथ देने से अल्लाह तआला ख़ुश होता है, इस्लाम की तरक़्क़ी होती है। एक बार ऐसा हुआ कि रूम के बादशाह से नबी (सल्ल.) को मुक़ाबला करना था, रूम की सल्तनत बहुत बड़ी थी। रूम के बादशाह के पास फ़ौज भी बहुत ज़्यादा थी और सामान भी। उससे मुक़ाबला करना आसान न था। नबी (सल्ल.) ने अल्लाह के भरोसे पर मुसलमानों को इकट्ठा किया और उनसे कहा कि जो व्यक्ति इस समय अल्लाह के लिए जो कुछ दे सकता है, दे। प्यारे नबी (सल्ल.) के प्यारे साथियों ने ख़ूब दिल खोलकर दिया। किसी ने पैसे दिए, किसी ने घोड़े दिए, किसी ने हथियार दिए और जो लोग ग़रीब थे वे दिन-रात मज़दूरी करते, फिर जो कुछ पाते उसमें के कुछ पैसे बाल-बच्चों के खाने के लिए रख लेते, बाक़ी नबी (सल्ल.) की सेवा में पेश कर देते। हज़रत उमर (रज़ि.) ने इस मौक़े पर घर का आधा सामान लाकर दिया। हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) घर का सारा सामान लेकर आए। शरीर पर केवल कम्बल लपेट लिया। जब यह सारा सामान नबी (सल्ल.) को दिया तो आप (सल्ल.) ने पूछा "ऐ अबू बक्र ! बाल-बच्चों के लिए क्या छोड़ा?"

हज़रत अबू बक्र ने कहा, "बाल बच्चों के लिए अल्लाह और अल्लाह के रसूल (सल्ल.) को छोड़ा है।"

आप समझे! इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ यह है कि घर में कुछ नहीं छोड़ा। अल्लाह और अल्लाह के रसूल (सल्ल.) को छोड़ा है। यानी अल्लाह के भरोसे पर सब कुछ दे दिया है अब वह मालिक है, जैसे चाहे रखे। आपने अल्लामा इक़बाल (मशहूर इस्लामी शायर) का नाम सुना होगा। इक़बाल साहब ने इस ख़ैरात का हाल एक नज़्म (पद्य) में लिखा है। उसके आख़िर में यह शेर लिखा है:-

परवाने को चिराग़ है, बुलबुल को फूल बस
सिद्दीक़ के लिए है ख़ुदा का रसूल बस।

यानी जिस तरह परवाना चिराग़ को अपना सब कुछ समझता है और बुलबुल फूल को, उसी तरह अबू बक्र (रज़ि.) नबी (सल्ल.) को अपना सब कुछ समझते थे और परवाने और बुलबुल की तरह नबी (सल्ल.) के आशिक़ थे।

इस्लाम के दुश्मनों से मुसलमानों की लड़ाइयाँ होती रहीं, आख़िर में वह दिन भी आया कि नबी (सल्ल.) ने बढ़कर मक्का फ़तह कर लिया। जब मक्का फ़तह हो गया तो हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) अपने बाप अबू क़ुहाफ़ा के पास गए। उन्हें समझाया। फिर उनको साथ लेकर नबी (सल्ल.) के पास आए। अबू क़ुहाफ़ा बहुत बूढ़े थे। नबी (सल्ल.) उनको देखकर उठ खड़े हुए। और अबू बक्र (रज़ि.) से कहा कि इन्हें क्यों तकलीफ़ दी। मैं ख़ुद इनके पास जाता। इसके बाद अबू क़ुहाफ़ा मुसलमान हो गए। और अब्दुर्रहमान भी मुसलमान हो गए। वही अब्दुर्रहमान जो बद्र की लड़ाई में मुसलमानों से लड़ने गए थे और जिनके मुक़ाबले के लिए अबू बक्र (रज़ि.) ने नबी (सल्ल.) से इजाज़त माँगी थी। उस वक़्त प्यारे रसूल (सल्ल.) के प्यारे साथियों में केवल अबू बक्र (रज़ि.) ही ऐसे थे जिनका पूरा घराना मुसलमान हो गया था और सबमें यह बड़ाई अबू बक्र (रज़ि.) ही को प्राप्त थी अल्लाह उनसे राज़ी हो!

प्यारे रसूल (सल्ल.) की वफ़ात (देहान्त)

प्यारे रसूल (सल्ल.) की वफ़ात तिरेसठ (63) वर्ष की उम्र में हुई। आख़िरी उम्र में आप (सल्ल.) ने हज से वापस आकर एक दिन कहा कि अल्लाह ने अपने एक बन्दे से कहा कि "ऐ बन्दे! या तो दुनिया के क़रीब रह लो या अल्लाह के क़रीब।" उस बन्दे ने अल्लाह के क़रीब रहना पसन्द किया।

ज़ाहिर में प्यारे रसूल (सल्ल.) की बात एक नसीहत की बात थी। आप (सल्ल.) ऐसी ही नसीहतें किया करते थे, लेकिन यह बात सुनकर हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) रोने लगे। लोगों ने पूछा, "इसमें रोने की क्या बात है?" हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने बताया कि वास्तव में प्यारे रसूल (सल्ल.) ने यह बात कहकर अपने इन्तिक़ाल की तरफ़ इशारा किया है। अल्लाह तआला ने आप (सल्ल.) को बताया है कि थोड़े ही दिनों में अपने पास बुला लेगा। अल्लाह के क़रीब रहने का यही मतलब है।

सचमुच ऐसा ही हुआ। कुछ ही दिनों के बाद नबी (सल्ल.) बीमार पड़े। जब बीमारी अधिक बढ़ी और आप (सल्ल.) से चला न गया तो आप (सल्ल.) ने कहा, "अबू बक्र नमाज़ पढ़ाएँ।"

इसी ज़माने में एक दिन हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) नमाज़ पढ़ा रहे थे। इतने में नबी (सल्ल.) मसजिद में आए तो अबू बक्र (रज़ि.) ने इमामत से हटना चाहा, लेकिन नबी (सल्ल.) ने रोक दिया। फिर अबू बक्र (रज़ि.) के पास आकर बैठ गए और नमाज़ पढ़ने लगे। अबू बक्र (रज़ि.) नबी (सल्ल.) को देखकर नमाज़ पढ़ते और सारे नमाज़ी अबू बक्र (रज़ि.) को देखकर।

इसी नमाज़ के बाद नबी (सल्ल.) ने कहा कि जिन लोगों ने मुझपर एहसान किया है, मैंने उनमें से प्रत्येक का बदला चुका दिया। लेकिन जो एहसान अबू बक्र ने किया है, उसका बदला बाक़ी है। अबू बक्र को इसका बदला क़ियामत के दिन अल्लाह देगा। अल्लाह की क़सम! मुझे जितना फ़ायदा अबू बक्र के माल से पहुँचा है उतना किसी और के माल से नहीं पहुँचा। अगर मैं अल्लाह के सिवा किसी और को दोस्त बनाता तो अबू बक्र को बनाता, लेकिन

अल्लाह ने मुझे अपना दोस्त बना लिया है। इसलिए अबू बक्र मेरे दीनी भाई और यारे ग़ार (ग़ार के साथी) हैं। मेरे बाद मसजिद की तरफ़ जिस घर के दरवाज़े हों सब बन्द कर दिए जाएँ, लेकिन अबू बक्र के घर का दरवाज़ा न बन्द किया जाए। इसके बाद सोमवार के दिन 12 रबीउल अव्वल को नबी (सल्ल.) अल्लाह को प्यारे हो गए। आप (सल्ल.) के प्यारे साथियों (सहाबा) ने आप (सल्ल.) की वफ़ात की ख़बर सुनी तो सबको बड़ा दुख हुआ। इतना दुख उन्हें किसी और बात से नहीं हो सकता था। नबी (सल्ल.) के प्यारे साथी अपनी जान, अपना धन और अपनी सन्तान से अधिक आप (सल्ल.) को चाहते थे। नबी (सल्ल.) के इन्तिक़ाल की ख़बर सुनकर सभी बदहवास हो गए। हज़रत उमर (रज़ि.) का यह हाल था कि जैसे उनकी अक़्ल ही जवाब दे गई हो। उन्होंने नंगी तलवार लेकर कहा कि जो कहेगा कि नबी (सल्ल.) की वफ़ात हो गई, उसे क़त्ल कर दूँगा।

उस समय हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ही ऐसे थे जिन्हें सबसे अधिक नबी (सल्ल.) से मुहब्बत थी लेकिन उन्होंने अपने को सँभाला। मुसलमानों से कहा, "देखो, जो लोग मुहम्मद (सल्ल.) की इबादत करते थे वे समझ लें कि मुहम्मद (सल्ल.) वफ़ात पा गए और जो लोग अल्लाह की इबादत करते थे, वे समझ लें कि अल्लाह ज़िन्दा है और वह कभी नहीं मरेगा। यह कहकर क़ुरआन की आयत पढ़ी जिसका मतलब है–

> "मुहम्मद केवल अल्लाह के रसूल हैं, इनसे पहले बहुत-से रसूल हो चूके हैं।"

हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) ने यह आयत पढ़ी तो लोग समझ गए कि प्यारे रसूल (सल्ल.) ख़ुदा नहीं, बल्कि रसूल थे, और सभी रसूल जो उनसे पहले हो चूके हैं, वे इस दुनिया से चले गए। अल्लाह के सिवा सबको मौत आनी है, इसी लिए नबी (सल्ल.) को भी अल्लाह ने अपने पास बुला लिया है।

अब सबके होश बहाल हुए। उस समय हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने यह आयत पढ़ी तो सबको ऐसा महसूस हुआ कि जैसे यह आयत आज ही नाज़िल (अवतरित) हुई हो। बात यह थी कि उस समय लोग ऐसे परेशान हो गए थे कि

इस आयत की तरफ़ किसी का ध्यान ही नहीं गया। सच्ची बात यह है कि उस समय अल्लाह तआला ने हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) को न सँभाला होता तो न जाने क्या हो जाता।

प्यारे नबी (सल्ल.) की वफ़ात हज़रत आइशा (रज़ि.) के हुजरे में हुई थी। आप (सल्ल.) की वफ़ात के बाद ये लोग सोचने लगे कि आप (सल्ल.) को कहाँ दफ़न किया जाए? हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने बताया कि मैंने नबी (सल्ल.) से सुना है कि नबी को उसी जगह दफ़न किया जाता है जिस जगह उसकी मृत्यु होती है। अतः नबी (सल्ल.) की क़ब्र हज़रत आइशा (रज़ि.) के हुजरे में ही बनाई गई और वहीं आपको दफ़न किया गया।

इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन

"बेशक हम अल्लाह ही के हैं और बेशक उसके पास हमें जाना है।"

पहले ख़लीफ़ा

प्यारे रसूल (सल्ल.) ने अपनी ज़िन्दगी में इस्लामी हुकूमत की नींव डाली। आप (सल्ल.) ने अल्लाह के हुक्मों के मुताबिक़ इस्लामी हुकूमत क़ायम करके दिखा दी। आपने प्यारे सहाबा (रज़ि.) को समझा और बता दिया कि बिल्कुल इसी तरह इस्लामी हुकूमत का काम करना। इस्लामी हुकूमत में दीन और दुनिया के सारे काम अल्लाह और रसूल (सल्ल.) के हुक्मों के मुताबिक़ होते हैं। नमाज़, रोज़ा, हज और ज़कात इत्यादि के लिए जिस तरह अल्लाह ने हुक्म दिए और जिस तरह प्यारे रसूल (सल्ल.) ने करके दिखाया, उसी तरह इस्लामी हुकूमत में इबादत होनी चाहिए। शादी, ब्याह, लेन-देन, रहना-बसना, और शिक्षा आदि भी उसी तरह इस्लामी हुकूमत में होती है जो अल्लाह के हुक्मों के मुताबिक़ हो और उस तरह हो जैसे नबी (सल्ल.) ने बताया, सिखाया और समझाया। दुश्मनों से लड़ना, समझौते करना, अदालती फ़ैसले और लोगों को अल्लाह के हुक्मों पर उसी तरह चलाना जैसे प्यारे रसूल (सल्ल.) ने सिखाया, ये इस्लामी हुकूमत के काम हैं। इसका यह मतलब है कि जो भी काम इस्लामी हुकूमत में होगा वह भी उसी तरह होगा जिस तरह अल्लाह ने प्यारे नबी (सल्ल.) को बताया और आप (सल्ल.) ने अल्लाह के बन्दों को समझाया और करके दिखाया।

जब तक नबी (सल्ल.) जीवित रहे आपने यह सब किया। आपके इन्तिक़ाल के बाद लोग सोचने लगे कि अब इस्लामी हुकूमत का काम चलाने के लिए किसको चुना जाए? प्यारे रसूल (सल्ल.) के प्यारे साथियों में सबसे ज़्यादा क़ाबिल, समझदार और बहादुर हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) थे। सबने बहुत सोच-समझकर हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) को चुना। इस्लामी हुकूमत का काम चलाने के लिए जिस व्यक्ति को चुना जाता है उसे 'ख़लीफ़ा' कहते हैं। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) इस्लामी हुकूमत के सबसे पहले ख़लीफ़ा हो गए।

ख़लीफ़ा होने के बाद अबू बक्र (रज़ि.) ने बड़ी अच्छी तक़रीर की। उन्होंने कहा, "मैं इस्लामी हुकूमत का काम उसी तरह करूँगा जिस तरह अल्लाह का हुक्म है और जिस तरह नबी (सल्ल.) ने सिखाया है। अगर मैं ऐसा न करूँ तो फिर मेरा कहना न मानना।"

इसके बाद हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने नमाज़ और जिहाद की नसीहत की और नेक काम करने की ओर ध्यान दिलाया। कहा कि जो क़ौम अल्लाह की राह में जिहाद (जानतोड़ कोशिश) नहीं करती, अल्लाह उसे ज़लील (अपमानित) कर देता है और जो लोग बुरे काम करते हैं उनको अल्लाह मुसीबत में फँसा देता है, अल्लाह हम सबपर अपनी कृपा करे।

इस्लामी हुकूमत ख़तरे में

प्यारे नबी (सल्ल.) के इन्तिक़ाल की ख़बर पूरे अरब में फैली तो बुरे लोगों ने इस्लामी हुकूमत को ख़त्म करना चाहा। चार बहुत चालाक व्यक्तियों ने तरह-तरह के ढोंग दिखाकर लोगों को अपना अनुयायी बनाया और अपने को नबी कहलवाया। इसमें से एक मक्कार का नाम असवद अनसी था। यह यमन का रहनेवाला था। दूसरा तलीहा असदी था, तीसरा मुसैलमा कज़्ज़ाब जो यमामा का रहनेवाला और चौथी एक औरत थी जिसका नाम सजाह था।

इन चारों की क़ौम के बहुत-से लोगों ने उनका साथ दिया। इन सबने हज़ारों लड़ाका लोगों को अपने चारों तरफ़ इकट्ठा कर लिया। बड़ी-बड़ी फ़ौजें बनाईं और सबने यह तय किया कि इस्लामी हुकूमत को ख़त्म करके अपनी हुक़ूमत करें। यह सोचकर सब अपनी-अपनी जगह से मदीना की ओर चले। उनका इरादा था कि मदीना पर हमला करके मुसलमानों को ख़त्म कर दें। फिर मज़े से राज करें।

कुछ ऐसे लोग जो नए-नए मुसलमान हुए थे। उन्होंने दीने इस्लाम को अभी अच्छी तरह समझा नहीं था। उनका ईमान कच्चा था और वे लालची भी थे। उन्होंने ज़कात देने से इनकार कर दिया। कुछ ऐसे शरारती थे जिन्होंने कहा कि हम ज़कात तो देंगे, लेकिन इस्लामी हुकूमत के बैतुल-माल (ख़ज़ाने) में

जमा नहीं करेंगे। ख़ुद जिस तरह चाहेंगे, ख़र्च करेंगे और अगर इस्लामी हुकूमत का ख़लीफ़ा हमसे ज़कात माँगेगा तो उससे लड़ेंगे। ख़ुद मदीना में कुछ ऐसे मुसलमान थे जो दिल से तो इस्लाम और मुसलमानों के दुश्मन थे लेकिन ज़बान से अपने को मुसलमान कहते थे, और दिखाने के लिए मुसलमानों के साथ नमाज़ें भी पढ़ते थे। ये ज़ाहिर में तो मुसलमानों के साथ होते, लेकिन जब मौक़ा मिलता तो दुश्मनों से मिल जाते और दीने इस्लाम को ख़त्म करने की बातें सोचा करते। क़ुरआन ने ऐसे लोगों को 'मुनाफ़िक़' (कपटाचारी) कहा है। ये मुनाफ़िक़ ज़कात न देनेवाले, लालची और दुष्ट लोगों को ख़ूब बढ़ावा देते और छुप-छुपकर कहला भेजते कि तुम मदीना पर हमला करो, हम तुम्हारा साथ देंगे।

एक मुसीबत पहले से ही आ रही थी। इस्लामी हुकूमत के उत्तर में शाम (सीरिया) था। शाम देश से आगे ईसाइयों की हुकूमत थी। उनका बादशाह हिरक़्ल था। उसके पास बहुत बड़ी फ़ौज थी। वह नहीं चाहता था कि नई-नई जो इस्लामी हुकूमत बनी है वह मज़बूत हो। शाम और उसके आसपास बहुत-से ऐसे हाकिम (अधिकारी) थे जो हिरक़्ल की तरफ़ से नियुक्त किए गए थे। उसने अपने अधिकारियों से कहा कि जिस तरह हो इस्लामी हुकूमत को समाप्त करो। ये सभी अधिकारी अरब और शाम की सीमाओं पर अकसर छेड़छाड़ किया करते थे। फ़ौजों को लाते और लूट-मार करके चले जाते। प्यारे रसूल (सल्ल.) के समय से ये शरारतें (उपद्रव) किया करते थे। इनसे मुसलमानों की एक प्रसिद्ध लड़ाई भी हो चुकी थी। इस लड़ाई में प्यारे रसूल (सल्ल.) के तीन प्यारे साथी शहीद हुए थे। ज़ैद बिन हारिसा (रज़ि.), दूसरे जाफ़र तय्यार (रज़ि.) और तीसरे अब्दुल्लाह बिन रवाहा (रज़ि.)। ये तीनों बड़े बहादुर थे और प्यारे नबी (सल्ल.) इनसे बहुत मुहब्बत करते थे।

प्यारे रसूल (सल्ल.) ने ईसाइयों की शरारतों को रोकने के लिए हज़रत ज़ैद बिन हारिसा (रज़ि.) के नवयुवक बेटे हज़रत उसामा बिन ज़ैद (रज़ि.) को एक सेना के साथ शाम की ओर जाने का आदेश दिया था। अभी यह सेना मदीना से निकली ही थी कि प्यारे नबी (सल्ल.) का इन्तिक़ाल हो गया और उसामा (रज़ि.) रुक गए।

देखा आपने! जब हज़रत सिद्दीक़े अकबर (रज़ि.) पहले ख़लीफ़ा हुए तो इस्लामी राज्य कैसे ख़तरे में था। एक तरफ़ अपने को नबी कहलानेवाले वे झूठे और मक्कार थे जो सेना लिए मदीना की तरफ़ बढ़े चले आ रहे थे, दूसरी तरफ़ वे दुष्ट और लालची मुसलमान थे जिन्होंने ज़कात देने से इनकार कर दिया था। तीसरी तरफ़ मदीना के आसपास के लोग थे जिनसे मदीना के मुनाफ़िक़ मिले हुए थे और उन्हें शरारत पर उभारा करते थे, और शाम (सीरिया) की तरफ़ ईसाई बादशाह इस्लामी हुकूमत को किसी तरह भी नहीं देख सकता था।

सिद्दीक़ी तदबीरें (उपाय)

इन सभी ख़तरों का सामना करने के लिए पहले ख़लीफ़ा हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने प्यारे रसूल मुहम्मद (सल्ल.) के प्यारे साथियों को बुलाया और उनसे राय ली कि क्या करना चाहिए? सहाबा किराम (रज़ि.) ने राय दी कि इस समय चारों ओर से लोग इस्लाम और इस्लामी हुकूमत के ख़िलाफ़ उठ खड़े हुए हैं। इसलिए हज़रत उसामा (रज़ि.) को इस समय रोक लिया जाए और इसी सेना से दुश्मन का सामना किया जाए जब यह झगड़ा मिट जाए तब ईसाई बादशाह से निबट लिया जाएगा।

सहाबा (रज़ि.) की इस राय का जवाब हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने जो कुछ दिया वह सुनने के लायक़ है और उसमें ईमान बढ़ानेवाली और नसीहतवाली बात है। कहा – "ख़ुदा की क़सम! जिसके क़ब्ज़े में मेरी जान है, चाहे मदीना ख़ाली हो जाए और मैं अकेला ही रह जाऊँ शेर, भेड़िये और कुत्ते मेरी बोटियाँ नोच खाएँ, फिर भी मैं उसामा को न रोकूँगा, क्योंकि उसामा को प्यारे रसूल (सल्ल.) ने लश्कर देकर शाम की तरफ़ रवाना किया था।" (मतलब यह कि जो आदेश प्यारे रसूल (सल्ल.) ने दिया है उसके ख़िलाफ़ न करूँगा।) इसके बाद इस्लामी झंडे की तरफ़ इशारा करके बड़े जोश के साथ कहा, "ख़ुदा की क़सम! जिस झंडे को अल्लाह के नबी (सल्ल.) ने लहराया है, उसे मैं किसी भी सूरत में न लपेटूँगा।"

सारे सहाबा (रज़ि.) ख़ामोश हो गए। फिर एक सहाबी ने राय दी कि

"अच्छा अगर आप इस सेना को भेजना ही चाहते हैं तो उसका सेनापति नौजवान उसामा (रज़ि.) को न बनाएँ, किसी अनुभवी और बड़ी उम्र के व्यक्ति को सेनापति का पद (सिपहसालारी) दीजिए।"

यह सुनकर हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) को गुस्सा आ गया। फ़रमाया कि प्यारे रसूल (सल्ल.) ने तो उसामा को इस सेना का सेनापति बनाया और तुम कहते हो कि मैं उसामा को सेनापति न बनाऊँ। मैं प्यारे रसूल (सल्ल.) के हुक्म को कभी भी नहीं टाल सकता।

इसके बाद यह कहा गया कि अच्छा अगर आप का यही इरादा है तो इस सेना में जो बड़े-बड़े समझदार और बहादुर लोग हैं, उनमें से कुछ लोगों को सलाह-मशविरे के लिए रोक लीजिए।

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने यह बात भी नहीं मानी और कहा, "प्यारे रसूल (सल्ल.) ने जिसे भी इस सेना के साथ भेजा है उसे मैं रोक नहीं सकता।" यह कहकर हुक्म दिया कि वे सभी लोग उसामा के साथ जाएँगे जिनका नाम प्यारे रसूल (सल्ल.) ने लिया है।

अल्लाहु अकबर! प्यारे रसूल (सल्ल.) के कैसे ताबेदार (आज्ञाकारी) थे अबू बक्र (रज़ि.)! नबी के आदेश के ख़िलाफ़ थोड़ी-सी बात भी करने को तैयार नहीं।

सेना चली तो हज़रत उसामा (रज़ि.) अपने बाप हज़रत ज़ैद (रज़ि.) के घोड़े पर सवार हुए। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) पैदल उनके साथ चले तो हज़रत उसामा (रज़ि.) ने घबराकर कहा, "ऐ मुसलामनों के ख़लीफ़ा! या तो आप सवार हो जाएँ या फिर मैं सवारी से उतरता हूँ।" "न, हरगिज़ नहीं! मैं हरगिज़ सवार न होऊँगा, और तुमको अल्लाह की क़सम है, सवारी से न उतरना। मैं चाहता हूँ कि कुछ दूर पैदल चलूँ और धूल मेरे पैरों पर पड़े। (जानते हो!) अल्लाह के सिपाही के एक-एक क़दम के बदले सात सौ नेकियाँ लिखी जाती हैं।"

यह था पहले ख़लीफ़ा का जवाब। उस सेना में हज़रत उमर (रज़ि.)

जैसे सहाबी भी थे। थोड़ी दूर चलकर हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) ने हज़रत उसामा (रज़ि.) से कहा, "तुम इजाज़त दो तो मैं सलाह-मशविरे के लिए उमर (रज़ि.) को अपने पास रख लूँ।"

हज़रत उसामा (रज़ि.) ने निहायत खुशी से इजाज़त दे दी और उस सेना के सिर्फ़ एक सिपाही हज़रत उमर (रज़ि.) रुक गए, लोग हैरान थे और आपस में बातें कर रहे थे कि ख़लीफ़ा ने यह क्या किया। मदीना के चारों तरफ़ ख़तरा-ही-ख़तरा है। उपद्रवी हमला करने पर तुले हैं। बहुत-से लोग ज़कात नहीं दे रहे हैं, ऐसी स्थिति में अल्लाह के बहादुर सिपाहियों को मदीना से कोसों दूर भेज दिया।

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) यह सब सुनते और सब्र करते, लेकिन इससे ज़्यादा सच्ची और पक्की बात यह है कि जो अल्लाह और अल्लाह के रसूल (सल्ल.) के हुक्मों पर चलने के लिए अडिग हो जाता है, अल्लाह उसकी मदद ज़रूर करता है।

अब देखें, जिस समय हज़रत उसामा (रज़ि.) इस्लामी सेना को लेकर मदीना से निकले और यह ख़बर चारों तरफ़ फैली तो अल्लाह की तरफ़ से दुश्मनों के दिलों में डर छा गया। वे यह समझे कि जब ऐसी फ़ौज इतनी दूर भेजी जा सकती है तो मदीना में ख़लीफ़ा की असल फ़ौज न जाने कितनी हो। फिर ऐसा हुआ कि वे चारों मक्कार, झूठे और चालाक जो अपने को नबी कहलवा रहे थे और फ़ौजें लेकर मदीना की तरफ़ आ रहे थे, अपनी-अपनी जगह रुक गए और यह सोचने लगे कि उसामा (रज़ि.) की लड़ाई का हाल देख लें कि क्या होता है, उसके बाद समझ-बूझकर और बड़ी सेना के साथ मदीना पर हमला करेंगे। जब तक उसामा की लड़ाई ख़त्म हो, उस समय तक अपनी ताक़त, हथियार और सामान बढ़ा लें।

ज़कात न देनेवालों से लड़ाइयाँ

यह तो उन चारों मक्कारों ने सोचा और रास्ते ही में रुक गए। इधर हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने यह किया कि बचे-खुचे मुसलमानों की एक फ़ौज

साथ ली और मदीना के आस-पास के दुष्टों को सज़ा देने के लिए निकल पड़े। लेकिन सहाबा (रज़ि.) ने फिर टोका। उन्होंने कहा, "ऐ मुसलमानों के ख़लीफ़ा! जो लोग मुसलमान हैं, नमाज़ पढ़ते हैं लेकिन ज़कात देने से इनकार करते हैं, उनपर आप हमला कैसे कर सकते हैं। यह बात तो ठीक नहीं। नबी (सल्ल.) ने कहा है कि जो लोग कलिमा पढ़ लें तो उनकी जानें और उनका माल सुरक्षित है, हाँ अगर उनपर किसी का हक़ निकलता है तो बात दूसरी है।"

इसका जवाब हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने यह दिया – "ख़ुदा की क़सम! जो लोग प्यारे नबी (सल्ल.) के ज़माने में ऊँट के पैर बाँधने की रस्सी भी देते थे अगर उसे देने से इनकार करेंगे तो मैं उनसे लड़ूँगा।" यह कहकर एक ज़ोरदार तक़रीर की और समझाया कि ज़कात का हुक्म अल्लाह ने दिया है और यह बन्दों का हक़ है, और क़ुरआन में जिस तरह उसके ख़र्च करने का हुक्म आया है, उसी तरह ख़र्च होना चाहिए, जो व्यक्ति ज़कात देने से इनकार करता है वह अल्लाह के हुक्म को रद्द करता है, बन्दों का हक़ मारता है और क़ुरआन के हुक्म को टालता है।

इस तरह हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) की बात लोगों की समझ में आ गई। हज़रत उमर (रज़ि.) कहते हैं कि मैंने यह तक़रीर सुनकर समझ लिया कि इस्लाम और क़ुरआन को जितना अबू बक्र (रज़ि.) समझते हैं उतना हममें से कोई नहीं समझता।

अब मदीना के सभी मुसलमान अल्लाह के हुक्म के मुताबिक़ अपने ख़लीफ़ा के साथ हो गए। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) मदीना की सुरक्षा व्यवस्था करके सुबह-सुबह निकले और मदीना के आस-पास जो दुश्मन जमा हो रहे थे उनपर हमला कर दिया। यह देखकर आस-पास के वे सच्चे और वफ़ादार मुसलमान, जो उपद्रवियों से डरे-सहमे हुए थे और उपद्रवी उनसे ज़कात माँग रहे थे, अपने-अपने घरों से तलवारें लेकर बाहर निकल आए। उन्होंने ख़लीफ़ा का साथ दिया। उपद्रवियों से लड़े भी और ज़कात भी अदा की। यह देखकर उपद्रवियों ने कुछ मुसलमानों को धोखे से क़त्ल कर दिया। यह ख़बर हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) को मिली तो उन्होंने इन मुसलमानों का बदला लेने की क़सम खाई।

यह हादसा ज़ुलक़िस्सा के मक़ाम पर पेश आया। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने मुसलमानों को हुक्म दिया कि ज़ुलक़िस्सा पर हमला कर दें और ख़ुद आगे बढ़े तो बड़े-बड़े समझदार सहाबा (रज़ि.) ने कहा, "ऐ मुसलमानों के ख़लीफ़ा! आप इस तरह आगे न बढ़ें और अपने को ख़तरे में न डालें। आप तो मदीना में बैठकर इन्तिज़ाम करें, हम जान देने के लिए हाज़िर हैं। अगर (ख़ुदा न करे) आपकी जान को कुछ नुक़सान पहुँचा तो इस्लामी हुकूमत की व्यवस्था ही बिगड़ जाएगी। आप मदीना में जमे रहेंगे तो दुश्मन पर रौब छाया रहेगा। आप किसी दूसरे को सरदार बनाकर भेजिए।"

हज़रत अली (रज़ि.) ने तो मुहब्बत से ख़लीफ़ा के घोड़े की लगाम थाम ली और बोले, "ऐ प्यारे रसूल (सल्ल.) के प्यारे ख़लीफ़ा! आप कहाँ जा रहे हैं। मैं इस वक़्त आपसे वही कहूँगा जो उहुद की लड़ाई में प्यारे नबी (सल्ल.) ने आपसे कहा था कि अपने को ख़तरे में न डालिए, आप तलवार को म्यान में कीजिए, मदीना में बैठकर व्यवस्था कीजिए।"

कामयाबियाँ

ख़ुदा की क़ुदरत! कि उन्हीं दिनों हज़रत उसामा (रज़ि.) अपनी लड़ाई जीतकर बड़े ठाट से वापस आ गए। उनके साथ बहुत-सा माले ग़नीमत था। उनके आने की ख़बर मिली तो मदीना में ख़ुशी की लहर दौड़ गई। ख़लीफ़ा हज़रत अबू बक्र (रज़ि.), तमाम सहाबा और औरतों ने भी बढ़कर हज़रत उसामा (रज़ि.) का स्वागत किया। जिस समय उसामा (रज़ि.) मदीना में दाख़िल हुए तो वे अपने बाप के घोड़े पर सवार थे। इस्लामी झंडा हज़रत बरीदा (रज़ि.) के हाथ में था जो हवा से लहरा रहा था। यह वही झंडा था जिसे अल्लाह के आख़िरी रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) ने लहराया था और उसामा (रज़ि.) को दिया था। इसी के बारे में हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने कहा था कि "ख़ुदा की क़सम! मैं नबी (सल्ल.) के लहराए हुए झंडे को हरगिज़ न लपेटूँगा।"

इस विजय पर कुछ बड़े-बड़े सहाबा (रज़ि.) जोश में आकर पुकार उठे –

"अल्लाह की क़सम! अगर अबू बक्र (रज़ि.) ख़लीफ़ा ने होते तो अल्लाह की इबादत न होती।" मदीना में यह ख़ुशी थी और अरब के जिस व्यक्ति ने भी यह ख़बर सुनी उसपर रौब छा गया। यह सब अल्लाह की तरफ़ से हुआ और अल्लाह उसी की मदद करता है जो उसके हुक्मों पर उसी तरह चलता रहे जिस तरह नबी (सल्ल.) ने समझाया, सिखाया और करके दिखाया। और अल्लाह के नबी (सल्ल.) के हुक्मों पर अबू बक्र (रज़ि.) चले तो पहली और बड़ी कामयाबी अल्लाह ने प्रदान की।

हज़रत उसामा (रज़ि.) के आ जाने से मुसलमानों के हौसले और बढ़ गए। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने हज़रत उसामा (रज़ि.) को मदीना का इन्तिज़ाम सौंपा और कहा कि तुम आराम करलो। इसके बाद एक अच्छी-सी सेना लेकर ज़ुलक़िस्सा के दुष्टों पर हमला कर दिया और मुसलमानों को क़त्ल करने का भरपूर बदला उनसे लिया। फिर दूसरे दुष्टों और उपद्रवियों को सज़ा देकर उनके ख़तरे को दूर किया और जब इतमीनान हो गया तो मदीना वापस आए।

झूठे नबियों का दमन

जब मदीना के आस-पास इन्तिज़ाम ठीक हो गया तो हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने चारों झूठे नबियों और उन लोगों की तरफ़ ध्यान दिया जिन्होंने ज़कात देते से इनकार किया था या इस्लाम से फिर कर बग़ावत पर आमादा हो गए थे, यानी 'मुर्तद' हो गए थे।

उन सबका सामना करने के लिए हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने ग्यारह झंडे बनाए, ग्यारह फ़ौजें तैयार कीं और फिर उनके ग्यारह आफ़िसर चुने। इन आफ़िसरों को एक-एक झंडा दिया और दुश्मनों की तरफ़ भेजना शुरू कर दिया। जिस आफ़िसर को इस्लामी सेना के साथ भेजते, उसे बड़ी अच्छी-अच्छी नसीहतें करते थे। समझाते कि देखो, जिससे जो वादा करना उसे ज़रूर पूरा करना, बच्चों, बूढ़ों और औरतों को क़त्ल न करना, झूठ न बोलना, विश्वासघात न करना, जितनी आवश्यकता हो उसके मुताबिक़ ऊँट और बकरी ज़बह करना। जिस क़ौम से जंग करना पहले उसे समझाना, जिससे मिलना

उसकी इज़्ज़त करना और बुज़ुर्गों का ख़्याल करना। जब खाना तो बिसमिल्लाह ज़रूर पढ़ लेना। दूसरे मज़हब के लोग अपने-अपने गिरजाघरों या मंदिरो में अपने ख़ुदा की इबादत में लगे हों तो उनको न छेड़ना और उन सभी बातों का ध्यान रखना जिनको करने का हुक्म अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने दिया है। न उसमें कमी करना, न ज़्यादती करना। अब जाओ, अल्लाह की राह में जिहाद करो।"

इसी तरह की और बहुत-सी नसीहतें करके अपने ग्यारह सरदारों को मदीना से दूर भेज दिया और व्यवस्था ऐसी की कि प्रत्येक दिन की ख़बरें मिलती रहें।

ये फ़ौजें रवाना हुईं। अल्लाह की मदद उनके साथ थी। अल्लाह ने हर जगह उनको कामयाबी दी, दुश्मन हारे। दो झूठे नबी – मुसैलिमा कज़्ज़ाब और असवद अनसी क़त्ल हुए। तलहा हारा तो भागा और फिर सच्चे दिल से मुसलमान हो गया। और वह मक्कार औरत सजाह जिसने अपने को नबी कहा था, वह भी भागी और अपने वतन में जाकर घर बैठ रही और फिर मुसलमान हो गई। अल्लाह ने इन सबका क़िस्सा पाक किया।

अब ईरान और शाम (सीरिया)

वे लोग भी इस्लामी फ़ौजों का सामना न कर सके जो मदीना से दूर रहते थे और जिन्होंने ज़कात देने से इनकार किया था। इस्लामी हुकूमत के अन्दर इस झगड़े को दूर करने में हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) को पूरा एक वर्ष बीत गया। इसके बाद आपने इस्लामी हुकूमत की सरहदों के पासवाली हुकूमतों की तरफ़ ध्यान दिया। शाम की सरहद पर हज़रत उसामा (रज़ि.) के हाथों ईसाई बहुत बुरी तरह हार चुके थे लेकिन बार-बार इस्लामी हुकूमत में घुस आते और लूटमार करके वापस चले जाते। यही हाल दूसरी तरफ़ ईरान की सरहद पर ईरानी कर रहे थे। शाम की तरफ़ ईसाइयों की रूमी सल्तनत और ईरान की तरफ़ ईरानी सल्तनत दोनों बहुत बड़ी सल्तनतें थीं। उनके बार-बार हमलों की ख़बर हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) को मिली तो आपने तमाम सहाबा (रज़ि.) को इकट्ठा किया और एक ज़ोरदार तक़रीर की। तक़रीर में कहा –

"मैं चाहता हूँ कि सरहद पर जो लोग इस्लामी हुकूमत में घुसकर मुसलमानों को परेशान करते हैं, उनसे जिहाद करूँ। इस जिहाद में जो मारा जाएगा वह शहीद होगा। शहीदों के लिए अल्लाह के यहाँ जो बड़ा सवाब है वह इस दुनिया से बहुत अच्छा है। और जो ज़िन्दा बचेगा वह अल्लाह की राह में मदद देनेवाला 'ग़ाज़ी' कहलाएगा। अल्लाह उसे वह सवाब देगा जो अल्लाह के सिपाहियों (मुजाहिदीन) को मिलेगा। यह मेरी राय है। अब आप लोग अपनी राय दीजिए।"

यह तक़रीर सुनकर तमाम सहाबा (रज़ि.) ने मदद का वादा किया और ऐसी ही तक़रीरें कीं। सबने कहा, "आपने जो कुछ सोचा है वह कीजिए, हम सब आपका कहना मानेंगे। हम जानते हैं कि आप जो कुछ सोचते हैं, ठीक सोचते हैं। हम आपके ख़िलाफ़ काम न करेंगे। आपकी सलाह बहुत पक्की होती है, इसमें शक भी नहीं करना चाहिए।

सारे सहाबा (रज़ि.) ने सहयोग का वादा किया तो हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने दोनों सीमाओं (सरहदों) की तरफ़ फ़ौजें भेजने के लिए तैयारियाँ कीं। उनके लिए अफ़सर मुक़र्रर किए। इन अफ़सरों को बहुत अच्छी नसीहतें कीं। इसके बाद अल्लाह के भरोसे पर उन्हें शाम (सीरिया) और ईरान की तरफ़ भेज दिया। इस्लामी फ़ौजों ने ईसाइयों और ईरानियों की सल्तनत के अन्दर क़दम रखा। वहाँ के अफ़सरों के पास अपने आदमी भेजे और उन्हें इस्लाम की तरफ़ बुलाया। वह न माने तो बाक़ायदा लड़ाइयाँ होने लगीं।

इन्तिक़ाल

ये लड़ाइयाँ हो ही रही थीं कि एक दिन इतवार को जबकी जुमादुल उख़रा 13 हिजरी की 7 तारीख़ थी, सर्दी का मौसम था, हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने ग़ुस्ल किया। होनेवाली बात, ठंड लगी, फिर बुख़ार आ गया।

बुख़ार की हालत में भी लगातार इस्लाम और मुसलमानों की भलाई के बारे में सोचते रहे। तमाम सहाबा (रज़ि.) आपकी बीमारी से घबरा गए। आपको काम से रोका और पूछा, "आपने किसी हकीम को दिखाया?" कहा, "हाँ मेरा

हकीम मुझे देख रहा है।'' फिर पूछा गया, ''तो हकीम ने क्या बताया?'' कहा, ''हकीम कहता है कि जो मैं चाहता हूँ, करता हूँ।''

यह जवाब सुनकर लोग समझ गए कि इस हकीम से मतलब अल्लाह तआला है और हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) अल्लाह की मरज़ी पर सब्र और शुक्र अदा करनेवाले हैं। हज़रत उसमान ग़नी (रज़ि.) पड़ोसी थे। सबसे अधिक सेवा उन्होंने ही की थी। जब पहले ख़लीफ़ा को मौत का यक़ीन हो गया तो सोचने लगे कि अब ख़लीफ़ा किसे बनाएँ। उनके बेटे मौजूद थे। अब्दुर्रहमान बिन अबी बक्र (रज़ि.) बहुत बहादुर सहाबी थे। लेकिन अबू बक्र (रज़ि.) ने अपने घरवालों के बारे में नहीं सोचा। इस्लामी हुकूमत किसी के घर की सम्पत्ति नहीं होती और न बादशाहत का तरीक़ा ही इसमें चलता है कि बाप के बाद बेटे सम्पत्ति पाएँ या बादशाह हों। इस्लामी हुकूमत का काम तो ऐसे मुसलमान के सुपुर्द किया जाता है जो ज्ञान में सबसे अधिक हो, सबसे अधिक अल्लाह से डरनेवाला हो और सबसे अधिक सूझ-बूझवाला हो। इन्हीं बातों को सामने रखकर सहाबा पर नज़र डाली। वे सारे सहाबा (रज़ि.) में हज़रत उमर (रज़ि.) को बहुत अधिक क़ाबिल और बेहतर आदमी समझते थे। इसलिए उनके बारे में प्यारे साथियों से राय-मश्विरे लेने शुरू कर दिए। एक बड़े सहाबी अब्दुर्रहमान बिन औफ़ (रज़ि.) थे। उनसे उमर (रज़ि.) के बारे में पूछा। उन्होंने कहा कि हर बात में वे हम सबसे अच्छे हैं, हाँ ज़रा तेज़-मिज़ाज के हैं। हज़रत उसमान (रज़ि.) से पूछा तो उन्होंने जवाब दिया कि उमर (रज़ि.) के बराबर हममें से कोई नहीं और जैसे वे नज़र आते हैं वास्तव में वे उससे भी अच्छे हैं। ऐसी राएँ और बहुत-से सहाबा ने दीं। हज़रत उमर (रज़ि.) की तेज़मिज़ाजी के बारे में कई सहाबा ने कहा। जब ये सभी बातें मालूम हो गईं तो कहा कि मुझे उठाकर बैठाओ। लोगों ने आपको बिठाया। आपने कहा, ''उमर (रज़ि.) की तेज़ी इस कारण है कि मैं नर्म हूँ। जब इस्लामी हुकूमत का बोझ सर पर पड़ेगा और वह ज़िम्मेदार होंगे तो नर्म पड़ जाएँगे। और देखो तुम मुझे उमर की तेज़-मिज़ाजी से डराते हो तो सुनो, जब अपने रब से मिलूँगा और वह पूछेगा तो जवाब दूँगा कि ऐ मेरे रब! मैंने तेरे बन्दों में से सबसे अच्छे इनसान को ख़लीफ़ा बनाया था।

वसीयत

इसके बाद हज़रत उसमान (रज़ि.) से हज़रत उमर (रज़ि.) के ख़लीफ़ा बनाने की वसीयत लिखवाई। फिर मदीना के सारे लोगों को बुलवाया। उन्हें वह वसीयत सुनाई। इसके बाद कहा कि देखो मैंने उमर (रज़ि.) को ख़लीफ़ा बनाया है, वे न मेरे घराने के आदमी हैं और न रिश्तेदार हैं (बल्कि तुममें से सबसे अच्छा समझकर उमर को ख़लीफ़ा बनाया है)। क्या तुम उन्हें ख़लीफ़ा मानोगे? मदीना के सभी मुसलमानों ने कहा कि आपके बाद हम उमर (रज़ि.) को ख़लीफ़ा मानते हैं।

यह हो चुका तो हज़रत उमर (रज़ि.) को अपने पास बुलाया, बिठाया और देर तक इस्लामी हुकूमत के बारे में ऊँच-नीच समझाते रहे, अल्लाह से डरते रहने और प्यारे रसूल (सल्ल.) की पूरी-पूरी पैरवी करने की नसीहत करते रहे। फिर आख़िरत के हिसाब और अल्लाह के अज़ाब से डराया और मोमिन को अल्लाह जो नेमतें देगा उसके बारे में भी कहा। आख़िर में कहा कि हर वक़्त मौत को याद रखना।

हज़रत उमर (रज़ि.) को नसीहत कर चुके तो प्यारी बेटी उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) से कहा कि अपने भाइयों और बहनों का हक़ अदा करती रहना। पच्चीस दिरहम मुझपर कर्ज़ है, वह अदा कर देना और यह जो ग़ुलाम है, यह सरकारी काम से मेरे पास था। मेरे मरने के बाद इसे उमर (रज़ि.) के पास भेज देना। यह ऊँटनी भी सरकारी है और मेरे शरीर पर जो चादर है वह भी बैतुलमाल से ली थी। ये चीज़ें बैतुलमान को वापस कर देना।

आख़िर में ग़ुलाम से पूछा कि मैंने ख़लीफ़ा होने के बाद से अब तक बैतुलमाल से कितनी रक़म ली है। ग़ुलाम ने हिसाब लगाकर बताया। हुक्म दिया कि यह रक़म मेरा घर बेचकर बैतुलमाल में वापस कर दी जाए। जिस समय सरकारी ग़ुलाम, सरकारी ऊँटनी, चादर (जो सवा सौ रुपये की थी) और ख़लीफ़ा होने की अवधि की कुल तनख़्वाह हज़रत उमर (रज़ि.) के पास पहुँची तो वे देखकर रोने लगे, फिर बोले, "अबू बक्र (रज़ि.) ने बड़े इमतिहान में डाल दिया। कौन उनकी तरह कर सकेगा।"

पहले ख़लीफ़ा का कफ़न

सोमवार का दिन आया तो हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने हज़रत आइशा (रज़ि.) से पूछा – "आज कौन-सा दिन है?" बताया कि सोमवार है। फिर पूछा – "प्यारे रसूल (सल्ल.) का इन्तिक़ाल किस दिन हुआ था?" बताया कि सोमवार के दिन। यह सुनकर कहने लगे – "उम्मीद है कि आज ही अल्लाह मुझे अपने पास बुला लेगा। अब बताओ कि नबी (सल्ल.) को कितने कपड़ों में कफ़नाया गया था।" हज़रत आइशा (रज़ि.) ने बताया कि तीन कपड़ों में।

उस समय ख़लीफ़ा के शरीर पर दो पुराने और फटे कपड़े थे। कहने लगे कि दो कपड़े तो ये हैं, तीसरा बाज़ार से मँगवा लेना। हज़रत आइशा (रज़ि.) रोकर बोलीं – "अब्बाजान! हम तीनों नए कपड़े मँगवा सकते हैं।" कहा – "नए कपड़ों के ज़्यादा हक़दार मुर्दे नहीं, बल्कि ज़िन्दा लोग हैं। कब्र के कीड़े-मकोड़ों और लहू-पीप के लिए यही पुराने कपड़े ठीक हैं।"

हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) ने अपनी मौत के बारे में जो अंदाज़ा लगाया, वह ठीक निकला। उसी दिन मग़रिब और इशा के बीच इन्तिक़ाल हो गया। उस समय आपकी उम्र 63[1] साल की थी। इन्तिक़ाल की ख़बर जब मदीनावालों को मिली तो जिसने सुना वह रोने लगा। कहते हैं कि लोगों को इस तरह का दुख और अफ़सोस हुआ जिस तरह प्यारे रसूल (सल्ल.) की वफ़ात के समय हुआ था। मदीनावालों ने अपने ख़लीफ़ा को नबी (सल्ल.) की क़ब्र के पास ले जाकर दफ़्न किया। हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) बचपन से प्यारे नबी (सल्ल.) के साथ रहे। मरने के बाद भी नबी (सल्ल.) के ही पास जगह मिली।

ख़िराजे अक़ीदत (श्रद्धांजलि)

हज़रत आइशा (रज़ि.) ने बड़े सब्र से काम लिया। बाप के इन्तिक़ाल के बाद कहा कि अब्बाजान ने दुनिया से मुँह मोड़ा तो उसे ज़लील करके छोड़ा।

---

1. यह अजीब बात है कि नबी (सल्ल.) की उम्र भी इन्तिक़ाल के समय 63 साल की थी और आप (सल्ल.) का इन्तिक़ाल भी दोशम्बा (सोमवार) के दिन हुआ।

आख़िरत की ओर मुँह किया तो उसे इज़्ज़त दी। प्यारे रसूल (सल्ल.) के बाद ये हमपर बहुत बड़ा दुख आ पड़ा है। लेकिन क़ुरआन करीम हमें सब्र की शिक्षा देता है। सब्र का फल बहुत बड़ा है। अल्लाह तआला मुझे सब्र दे!

हज़रत उमर (रज़ि.) ने कहा – "अल्लाह के रसूल (सल्ल.) के ख़लीफ़ा ने मरने के बाद उम्मत को बड़ी मशक़्क़त में डाल दिया । उनके बराबर होना तो दूर रहा, अब तो कोई ऐसा नहीं जो उनकी धूल को भी पा सके।"

हज़रत अली (रज़ि.) ने तो पहले ख़लीफ़ा की ख़ूबियाँ गिनाते हुए बहुत बड़ी तक़रीर कर डाली। तक़रीर भी ऐसी जैसे हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) सामने हों और उनसे कह रहे हों। कहा –

> " ऐ अबू बक्र! आपपर अल्लाह तआला अपनी कृपा करे। आप प्यारे नबी (सल्ल.) को सबसे अधिक प्यारे थे। आप सबसे अधिक नबी (सल्ल.) से मुहब्बत करते थे। प्यारे रसूल (सल्ल.) को आपसे सुख मिला। प्यारे रसूल (सल्ल.) सारे भेद आपको बता दिया करते और आपसे सलाह-मशविरा किया करते थे। आप प्यारे रसूल (सल्ल.) को सबसे अच्छी राय देते थे। आप इस्लाम में हम सब से आगे रहे। आपके ईमान में ज़रा भी खोट नहीं। आपको अल्लाह और प्यारे रसूल (सल्ल.) पर पूरा-पूरा भरोसा रहा। आप सबसे अधिक अल्लाह से डरनेवाले थे। अल्लाह के दीन के लिए आपने बड़े-बड़े दुख झेले, सबसे अधिक नबी (सल्ल.) के पास रहे और सबसे अच्छे साथी भी । आप हमारे बड़े हमदर्द साथी और हमारे लिए बरकतवाले थे। हम सब से आपका दर्जा बहुत ऊँचा था और बड़ाई में भी सबसे अधिक थे। आपके तौर-तरीक़े प्यारे रसूल (सल्ल.) के तौर-तरीक़ों से पूरे-पूरे मिलते थे। प्यारे नबी (सल्ल.) भी आपको सबसे अधिक बड़ा और बुज़ुर्ग मानते और नबी (सल्ल.) के पास भी आपका मर्तबा बहुत बड़ा था।

ऐ हमारे बुज़ुर्ग साथी! अल्लाह तआला आपको नेकियों का अच्छा बदला दे। आप नबी (सल्ल.) के क़रीब कान और आँख का दर्जा रखते थे यानी आप जो कुछ देखते और सुनते और फिर नबी (सल्ल.) से कहते तो नबी (सल्ल.) तुरन्त मान लेते। आपने नबी (सल्ल.) के नबी होने की गवाही उस समय दी जब दूसरे लोग उन्हें झुठला रहे थे। उस समय अल्लाह तआला ने आपको "सिद्दीक़" कहा। आपने नबी (सल्ल.) के साथ उस समय हमदर्दी की जब लोग नबी (सल्ल.) को छोड़ बैठे थे। आपने बड़ी ही मुसीबत में नबी (सल्ल.) के साथी होने का हक़ अदा कर दिया। आप हिजरत के समय नबी (सल्ल.) के गुफावाले मित्र थे और उन दो में से एक थे जिनके साथ अल्लाह था। आप प्यारे रसूल (सल्ल.) के सच्चे ख़लीफ़ा थे और आपने ख़लीफ़ा होने का हक़ अदा कर दिया। आप उस समय भी दीन पर जमे रहे जब प्यारे रसूल (सल्ल.) के बाद अरब के अधिकतर लोग दीन से मुँह मोड़ गए थे, फिर आपने उस समय ऐसी मुस्तैदी दिखाई जब हम सुस्त पड़ रहे थे। आप अकेले उन लोगों से लड़ने निकल पड़े जो भेड़िये हो रहे थे। आपने उस समय बड़ी मज़बूती दिखाई जब दूसरे लोग कमज़ोर हो रहे थे। आपको हम सब ने अपना ख़लीफ़ा मान लिया, हालाँकि मुनाफ़िक़ों, ईर्ष्या करनेवालों और इस्लाम के दुश्मनों को बहुत बुरा लगा। आप उस समय हक़ पर जमे रहे जब दूसरे लोग डर रहे थे। आख़िरकार हमने आपकी ताबेदारी की और आप ही की राय का असर अत्यधिक होता था आपकी हर बात नपी-तुली और राय पक्की होती थी। आप हम सब से अच्छा बोलते और तक़रीर करते, और हम सब से अधिक बहादुर थे। उलझी हुई बातों को ख़ूब अच्छी तरह समझ लेते और फिर सुलझा देते।

ऐ हमारे बुज़ुर्ग साथी! ख़ुदा की क़सम आप दीन के सरदार थे। जब दूसरे लोग दीन (धर्म) में पीछे थे तो आप आगे-आगे रहे। फिर जब लोग दीन की तरफ़ बढ़े तो आपने उनको आगे बढ़ा दिया। आप हम सब मुसलमानों के लिए बाप की तरह मेहरबान रहे। मुसलमान अपनी कमज़ोरी के कारण जो काम न कर सके, आपने वह काम कर दिखाया। फिर अगर मुसलमानों ने नेकी छोड़ दी तो आपने उस नेकी की ओर उनकी दिलचस्पी बढ़ाई। जब हिम्मत हार गए तो आपने उनकी हिम्मत बढ़ाई। मुसलमान जब घबरा गए तो आपने उनकी मदद की। मुसलमानों ने जब मदद के लिए पुकारा तो आप दौड़ पड़े। फिर हम ने यह फल पाया कि आपकी प्रत्येक राय को मान लिया और सफलता पाई । आपके कारण ही अल्लाह ने वह कुछ दिया जो हम सोच भी न सकते थे। आप इस्लाम के दुश्मनों के लिए आग और अंगारा थे। और मुसलमानों के लिए मेहरबान। आप उस चिराग़ की तरह थे जिसकी लौ आँधियाँ बुझा न सकें। प्यारे रसूल (सल्ल.) ने आपके बारे में ठीक ही कहा था कि आपका शरीर तो कमज़ोर है, लेकिन आप अल्लाह के मामले में बहुत ही शक्तिशाली हैं, आप मेहमानों की सेवा करनेवाले, लोगों की नज़रों में बड़े, दूसरों का हक़ दिलानेवाले, सबके लिए एक समान व्यवहार करनेवाले, बड़े सच्चे, बड़े नर्म-दिल और नेक थे। आपकी वजह से अल्लाह ने इस्लाम और मुसलमानों को मज़बूती दी, अल्लाह का दीन ग़ालिब (प्रभावी) हुआ। इसमें शक नहीं कि आपकी जुदाई से हमारा दिल टुकड़े-टुकड़े है, लेकिन हम आपपर रोने के बजाय फ़ख़्र करते हैं। हम सब अल्लाह के लिए हैं और अल्लाह की तरफ़ लौट जानेवाले हैं। हम अल्लाह के फ़ैसले पर राज़ी हैं। अल्लाह की क़सम! नबी (सल्ल.) के इन्तिक़ाल के बाद हमपर ऐसी कोई परेशानी नहीं आई जैसी परेशानी आज आपकी मौत से आई। आप तो

> हमारे लिए एक क़िला थे जिसमें हम चैन से थे। अल्लाह तआला आपको नबी (सल्ल.) से मिलाए। हमें हमारे सब्र का फल दे और हमेशा इस्लाम पर क़ायम रखे।"

हज़रत अली (रज़ि.) की यह तक़रीर बहुत लम्बी थी। हमने इसे संक्षिप्त कर दिया है। हज़रत अली (रज़ि.) की तक़रीर ख़त्म हुई तो लोगों की आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। सबने कहा, "ऐ अली! ऐ प्यारे रसूल के दामाद! आपने सच कहा।"

कुछ और ख़ास बातें

गुज़र-बसर

हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) जब ख़लीफ़ा हुए तो साथ ही अपना रोज़गार (कपड़ा बेचने की तिजारत) भी करते थे। एक दिन कपड़ों की गठरी लादे बाज़ार जा रहे थे। रास्ते में हज़रत उमर (रज़ि.) मिले। उन्होंने कहा, "आप कहाँ जा रहे हैं?" कहा, "बाज़ार जा रहा हूँ।" हज़रत उमर (रज़ि.) ने फिर कहा, "अगर आप ख़लीफ़ा होने के साथ यह भी करेंगे तो इस्लामी हुकूमत का काम कैसे चलेगा?" बोले, " क्या करूँ, बाल-बच्चों को पालना भी फ़र्ज़ है।"

यह सुनकर हज़रत उमर(रज़ि.) ने कहा, "अच्छा मेरे साथ अबू उबैदा (इस्लामी ख़ज़ाने के ख़ज़ांची) के पास चलिए। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) उनके साथ हो लिए। हज़रत अबू उबैदा (रज़ि.) के पास पहुँचे। हज़रत उमर (रज़ि.) ने कहा, "ऐ उम्मत के अमीन! (ये हज़रत अबू उबैदा की उपाधि थी और प्यारे रसूल (सल्ल.) ने दी थी) यह देखो मुसलमानों के ख़लीफ़ा हैं और बाज़ार जा रहे थे।"

हज़रत उमर (रज़ि.) ने इतना ही कहा, लेकिन अबू उबैदा (रज़ि.) ने मतलब समझ लिया। बोले – "मैं ख़ुद यही चाहता हूँ कि ख़लीफ़ा के लिए बैतुलमाल से कुछ रक़म निश्चित कर दूँ, मगर सोच यह रहा था कि कोई आकर मुझसे कहे।"

इसके बाद अबू उबैदा (रज़ि.) ने ख़लीफ़ा के लिए इतनी तनख़्वाह निश्चित कर दी जिसमें एक साधारण आदमी गुज़र-बसर कर सके और एक ग़ुलाम भी सेवा के लिए दे दिया।

हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) ने अब तिजारत (व्यापार) छोड़ दिया और तनख़्वाह पर गुज़र करने लगे। यह रक़म इतनी कम थी कि कठिनाई से गुज़र-बसर होती। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) को खाने की एक चीज़ बहुत पसन्द

थी। बीवी ने पैसा-पैसा बचाकर एक दिन वह चीज़ पकाई। आपने पूछा, "यह कहाँ से आई, मेरी तनख़्वाह तो इतना नहीं कि उससे मैं यह खा सकूँ।" बीवी ने हाल बताया तो वे सारी चीज़ें बैतुलमाल में भिजवा दीं और अबू उबैदा (रज़ि.) को लिख भेजा कि मेरे तनख़्वाह में से इतनी रक़म कम कर दें, क्योंकि मेरा गुज़ारा इतनी रक़म कम करने पर भी हो सकता है। जब मौत का समय आया तो जितनी तनख़्वाह ली थी वह भी वापस कर दी। अल्लाहु अकबर!

रसूल (सल्ल.) का नायब

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) इतनी बड़ाईवाले आदमी थे कि सारे मुसलमानों के अलावा स्वयं नबी (सल्ल.) आपकी इज़्ज़त करते थे। आप जिस तरफ़ निकल जाते लोग अदब से पेश आते। आप कहते, "लोगों ने मुझे बहुत अधिक अहमियत दी है।" फिर जब लोग आपकी तारीफ़ करते तो कहते, "मेरा हाल मेरा अल्लाह बेहतर जानता है।" फिर अल्लाह से दुआ करते – "ऐ मेरे रब! मेरे गुनाहों को माफ़ कर दे और ये लोग जो बढ़-चढ़कर मेरी तारीफ़ करते हैं उसमें मेरी पकड़ न करना।"

एक बार एक आदमी ने आपको अल्लाह का ख़लीफ़ा कह दिया तो आपने उससे कहा, "सच बात तो यह है कि अल्लाह के सच्चे नायब तो अल्लाह के नबी (सल्ल.) थे। मैं तो नबी (सल्ल.) का नायब हूँ और मेरे लिए यही बहुत है।" रसूल (सल्ल.) के नायब होते हुए भी बिलकुल ही घमण्ड न था। जब फ़ौज को रवाना करते तो जिसे फ़ौज का कमाण्डर बनाते उसे सवार करके पैदल उसके साथ चलते। वह बेचारा घबराकर कहता, "आप सवार हों, नहीं तो मैं भी उतर पड़ूँगा।" यह सुनकर कहते कि मैं सवाब के लिए ऐसा कर रहा हूँ।

मदीना में एक बुढ़िया थी। बीमार और अंधी बुढ़िया। हज़रत उमर (रज़ि.) सुबह-सवेरे जाकर उसका काम कर दिया करते थे। कुछ दिनों बाद उन्हें कुछ ऐसा मालूम हुआ कि कोई उनसे पहले आकर बुढ़िया का सारा काम कर जाता है। हज़रत उमर (रज़ि.) इस ताक में रहे। आख़िर एक दिन देख लिया। वे

हज़रत अबू बक्र (रज़ि) थे जो अँधेरे ही में बुढ़िया का काम कर दिया करते थे।

मदीने में एक यतीम लड़की थी। ख़लीफ़ा होने से पहले हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) उसकी बकरियों का दूध दुह दिया करते थे। जब ख़लीफ़ा हुए तो वह लड़की कहने लगी, "अब मेरी बकरियों का दूध कौन दुहेगा?" बोले, "मैं।"

ज़बान की हिफ़ाज़त

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) अपनी ज़बान की बड़ी हिफ़ाज़त करते थे। यानी बहुत सोच-समझकर और जाँच-पड़तालकर बात करते थे। फिर भी कभी न कभी कोई ऐसी बात ज़बान से निकल जाती कि बेचारे बहुत पछताते थे। तौबा करते और माफ़ी माँगते।

एक बार ऐसा हुआ कि हज़रत रबीआ (रज़ि.) से किसी बात पर बात बढ़ गई। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) की ज़बान से कोई ऐसी बात निकल गई जिससे स्वयं पछताए। अब रबीआ (रज़ि.) से झगड़े के बदले उनसे कहने लगे, "तुम भी ऐसी ही बात मुझे कह लो जिससे बदला हो जाए।" हज़रत रबीआ (रज़ि.) भी तो प्यारे रसूल (सल्ल.) के प्यारे साथियों में से थे। वे बदला लेने के लिए तैयार नहीं हुए। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने उनसे कहा, "अगर तुम वैसी बात न कहोगे तो मैं प्यारे रसूल (सल्ल.) से शिकायत करूँगा।" हज़रत रबीआ (रज़ि.) ने फिर भी न कहा, बल्कि यह कहा कि मैं जिस बात के लिए झगड़ रहा था उसको भी छोड़ता हूँ। अब तो हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) पर बड़ा असर हुआ। प्यारे नबी (सल्ल.) की तरफ़ चले। रास्ते में रबीआ (रज़ि.) के घराने और मुहल्लेवाले मिले। उन्होंने कहा, " वाह यह भी खूब है! ख़ुद ही कड़वी बात कही और ख़ुद ही शिकायत करने जा रहे हैं।" हज़रत रबीआ (रज़ि.) ने अपने लोगों से यह सुना तो उनसे कहा, "ख़बरदार! इनके ख़िलाफ़ कुछ न कहो, चुप रहो, जानते हो ये प्यारे नबी (सल्ल.) के ग़ार के साथी हैं। अगर उन्होंने तुमको देख लिया तो उन्हें ग़ुस्सा आ जाएगा। इनका ग़ुस्सा प्यारे नबी (सल्ल.) का ग़ुस्सा है और इन दोनों के ग़ुस्से से अल्लाह का ग़ुस्सा भड़कता है। ख़बरदार! भाग जाओ, कहीं ऐसा न हो कि अबू बक्र (रज़ि.) को नाराज़ करके मैं तबाह हो जाऊँ।"

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) प्यारे नबी (सल्ल.) के पास पहुँचे। सब हाल बताया। पीछे से रबीआ (रज़ि.) भी पहुँचे। प्यारे नबी (सल्ल.) ने रबीआ (रज़ि.) की बड़ी तारीफ़ की। कहा, "रबीआ! तुमने बहुत अच्छा किया कि पलटकर अबू बक्र (रज़ि.) को जवाब नहीं दिया। अच्छा अब तुम यह कह दो कि ऐ अबू बक्र! अल्लाह तुमको माफ़ करे।" हज़रत रबीआ (रज़ि.) ने यही कह दिया। हज़रत रबीआ (रज़ि.) के इस बरताव पर हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) रो पड़े।

इसी प्रकार एक बार हज़रत उमर (रज़ि.) को कोई बात कह दी, फिर पछताए और उमर (रज़ि.) से माफ़ी माँगने लगे। हज़रत उमर (रज़ि.) का ग़ुस्सा अभी ठण्डा नहीं हुआ था। उन्होंने माफ़ नहीं किया। अब तो हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) घबराकर प्यारे रसूल (सल्ल.) के पास पहुँचे। सारा हाल कहा। नबी (सल्ल.) ने कहा, "घबराओ नहीं अल्लाह तुमको माफ़ कर देगा।"

इधर हज़रत उमर (रज़ि.) का ग़ुस्सा ठण्डा हुआ तो वह पछताने लगे कि माफ़ी क्यों न दे दी। वे हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) के घर की तरफ़ भागे हुए गए। वे घर पर न मिले तो तलाश करते हुए नबी (सल्ल.) के पास पहुँचे। नबी (सल्ल.) हज़रत उमर (रज़ि.) को देखकर ग़ुस्से में आ गए। नबी को ग़ुस्से में देखा तो हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) को यह डर हुआ कि कहीं नबी (सल्ल.) उमर (रज़ि.) को कुछ कह न दें। झट बोले उठे – "ऐ अल्लाह के रसूल! ख़ुदा की क़सम, ग़लती मेरी थी। मैंने उमर पर ज़बरदस्ती की थी और मैं ही ज़ालिम था।" यह जो अबू बक्र (रज़ि.) ने कहा तो नबी का ग़ुस्सा ठण्डा हो गया। फिर उमर (रज़ि.) से कहा, "जब अल्लाह ने मुझे नबी बनाया तो सबने मुझे छोड़ दिया, लेकिन अबू बक्र (रज़ि.) ने मेरी गवाही दी, जान और माल से मेरा साथ दिया। क्या तुम उनको मुझसे छुड़ा दोगे।"

यही हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) एक दिन हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) से मिलने गए। देखा तो अबू बक्र (रज़ि.) अपनी ज़बान पकड़े हुए उसे खींच रहे हैं। यह देखकर हज़रत उमर (रज़ि.) ने कहा, "अल्लाह आपको माफ़ करे। ऐसा न कीजिए।" जवाब दिया, "इसी ज़बान ने तो तबाह किया है।"

अल्लाह का डर

थोड़ी-थोड़ी-सी भूल पर हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) को यह जो पछतावा और परेशानी होती थी वह इसलिए थी कि वे अल्लाह से और आख़िरत के हिसाब से बहुत घबराया करते थे। किसी पेड़ को देखते तो कहते, "क्या ही अच्छा होता कि मैं पेड़ होता! ऊँट मेरे पास से गुज़रता और मुझे चबा डालता। मुझसे आख़िरत में पूछगछ तो न होती।"

एक बार एक पेड़ की डाल पर एक चिड़िया बैठी देखी तो उसे देखकर कहने लगे, "ऐ चिड़िया! तू बड़ी ही तक़दीरवाली है, तेरे लिए आख़िरत में कोई हिसाब-किताब और पूछगछ नहीं। काश कि मैं भी तेरी तरह होता और जो चाहता करता और जो फल खाना चाहता खाता और जहाँ जी चाहता बैठता! (मगर इनसान होकर तो बड़ी देखभाल रखनी पड़ती है। इनसान के लिए तो बड़ी पाबंदियाँ हैं।)"

एक बार एक ग़ुलाम ने खाने की कोई चीज़ लाकर दी। आपने खाई, खाकर पसन्द किया। ग़ुलाम को शाबाशी दी, फिर पूछा, "कहाँ से लाए?" उसने कहा – "जब मैं मुसलमान नहीं हुआ था उस समय धोखा देकर एक व्यक्ति को क़र्ज़दार बना लिया था। वह आज रक़म लेकर आया तो मैं यह चीज़ पकाकर लाया।" यह सुनते ही आपने मुँह में अँगुली डालकर क़ै कर डाली फिर कहा कि हराम खाने से जो जिस्म (शरीर) पलता है उसकी जगह जहन्नम है।

इसी तरह एक बार ऐसा हुआ कि एक गाँव में पहुँचे। एक बद्दू के घर रुके। आपके साथ एक और बद्दू था। वह भी उसी घर में ठहरा। घरवाले की बीवी को बच्चा होवाला था। साथवाले बद्दू ने उस औरत से कहा कि अगर तू बकरी का गोश्त (मांस) खिलाए तो बेटा होगा। औरत ने इस शर्त पर बकरी का गोश्त खिलाया। खाना खाकर अबू बक्र (रज़ि.) को यह शर्तवाली बात मालूम हुई तो घबराकर तुरन्त क़ै कर डाली।

साथवाले बद्दू ने दो ग़लतियाँ कीं। अव्वल तो उसके इख़्तियार में न था कि उसके कहने से किसी को बेटा हो। बेटा-बेटी देनेवाला अल्लाह है। इस

प्रकार की शर्त कुफ़्र और शिर्क है। दूसरी बात यह है कि शर्त लगाकर इस तरह का मामला करना जुआ है, और जुआ हराम है।

कुरआन में है –

"इन-न अक-र-म-कुम इन्दल्लाहि अतक़ाकुम।"

"अल्लाह के नज़दीक सबसे अधिक बुज़ुर्ग वह है जो सबसे अधिक अल्लाह से डरनेवाला हो।"

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) सबसे अधिक अल्लाह से डरनेवाले थे। इसी लिए उनमें बहुत-सी ख़ूबियाँ पैदा हो गई थीं। कुछ ख़ूबियाँ तो ऐसी थीं कि उनमें कोई भी आपकी टक्कर का न था।

एक दिन की बात है। प्यारे नबी (सल्ल.) बैठे थे। आस-पास प्यारे सहाबा (रज़ि.) भी बैठे थे। नबी ने सहाबा (रज़ि.) से कहा, "आज तुममें से कोई रोज़े से है?" हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! आज मेरा रोज़ा है।" नबी (सल्ल.) ने कुछ देर बाद पूछा, "आज कोई किसी के जनाज़े में शामिल हुआ?" सारे सहाबा चुप थे। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने कहा, "मैं शामिल हुआ ।" थोड़ी देर के बाद नबी (सल्ल.) ने फिर पूछा, "आज किसी ने मुहताज को खाना खिलाया?" अब भी सारे सहाबा (रज़ि.) चुप थे। अबु बक्र (रज़ि.) ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मैंने खिलाया है।" नबी (सल्ल.) ने कुछ देर के बाद फिर पूछा, "आज किसी ने किसी बीमार की सेवा की?" इसका उत्तर भी अबू बक्र (रज़ि.) ही ने दिया। अब नबी (सल्ल.) ने कहा, "जिस ने एक दिन में ये नेक काम किए, वह ज़रूर जन्नत में जाएगा।"

वैसे भी हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) उन दस सहाबा में से एक हैं जिनको नबी (सल्ल.) ने जन्नती कहा।

हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.)

हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) प्यारे रसूल के बड़े प्यारे सहाबी (रज़ि.) में से एक थे। अल्लाह तआला से बहुत ज़्यादा डरनेवाले और प्यारे नबी (सल्ल.) से बहुत ही ज़्यादा मुहब्बत करनेवाले थे। बड़े समझदार और बहादुर व्यक्ति थे। सारे बड़े सहाबी हज़रत उमर (रज़ि.) की क़ाबिलियत (योग्यता) और समझदारी को मानते थे। यही कारण था कि हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने उनको अपने बाद अपनी ज़िन्दगी में ही ख़लीफ़ा चुन दिया और सारे सहाबा (रज़ि.) ने इस फ़ैसले को मान लिया। अतः हज़रत उमर (रज़ि.) हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) के बाद ख़लीफ़ा हुए। नबी (सल्ल.) के बाद पहले ख़लीफ़ा हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) हुए और दूसरे ख़लीफ़ा हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.), और यह वह बड़ा मरतबा (सम्मान) है कि इससे बढ़कर दूसरा कोई मक़ाम नहीं हो सकता। हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) के बाप-दादा का घर मक्का में था। हज़रत उमर (रज़ि.) के बाप-दादा बहुत बड़े घराने के लोग थे। सब बड़ी इज़्ज़त की नज़रों से देखे जाते और बड़े समझदार माने जाते थे। ऐसे ही हज़रत उमर (रज़ि.) भी थे।

हज़रत उमर (रज़ि.) के बाप का नाम ख़त्ताब था। इसी लिए आपको उमर बिन ख़त्ताब कहा जाता है। ख़त्ताब बड़े कठोर व्यक्ति थे। हज़रत उमर (रज़ि.) के लड़कपन का समय था। उस समय उनके बाप बड़े कठिन काम उनसे लेते थे। अगर वे थककर सुस्ताने बैठ जाते तो मारते थे। बचपन की इन बातों की वजह से हज़रत उमर (रज़ि.) बड़े परिश्रमी और मेहनती हो गए थे। सुस्ती उनके पास नहीं टिकती थी। दस-दस मील दूर तक घर के ऊँट चराने चले जाते थे और फिर कुश्ती भी सीखते। वे बचपन ही से बड़ी अच्छी कुश्ती लड़ने लगे थे। बड़े हुए तो कुश्ती में बड़ा नाम पैदा किया। बड़े जोशीले आदमी थे। ज़रा-सा भी कोई तैश दिला देता तो जोश में आ जाते और फिर किसी से नहीं डरते। ऐसे ही पुरजोश नौजवानों से उनकी दोस्ती भी थी।

जब हज़रत उमर (रज़ि.) जवान हुए यानी बीस-पच्चीस के बीच थे कि प्यारे रसूल (सल्ल.) ने अपने नबी होने का एलान किया और कहा कि अल्लाह को अपना माबूद (उपास्य) मानो। उसी की इबादत करो और मुझको अल्लाह का आख़िरी रसूल स्वीकार करो तो अल्लाह तआला तुम्हारी दुनिया और आख़िरत सब सँवार देगा, नहीं तो यहाँ भी परेशान रहोगे और आख़िरत में जहन्नम (नरक) में जगह पाओगे।

नबी (सल्ल.) इस तरह इस्लाम फैलाने लगे तो जिस तरह मक्का के और बड़े-बड़े लोग आपके दुश्मन हो गए उसी तरह उमर बिन ख़त्ताब भी दुश्मन हो गए। उमर बिन ख़त्ताब उस वक़्त नबी (सल्ल.) के ऐसे बड़े दुश्मनों में से थे जो बड़े कट्टर थे। इसी कट्टरपन में उमर बिन ख़त्ताब ने एक मुसलमान होनेवाली औरत को क़त्ल कर दिया था।

जब उमर बिन ख़त्ताब सत्ताईस साल के हुए तो एक दिन मक्का के सरदारों ने एक मीटिंग (सभा) की और नौजवानों को नबी (सल्ल.) का क़त्ल करने पर उभारा तो उमर बिन ख़त्ताब जोश में तलवार टेककर खड़े हो गए और कहा – "मैं मुहम्मद को क़त्ल करूँगा।" और यह कहकर नंगी तलवार लेकर नबी (सल्ल.) की तरफ़ चले। नबी (सल्ल.) उस समय अपनी फूफी के घर में थे और आप (सल्ल.) के साथ 39 मुसलमान और थे। रास्ते में उमर बिन ख़त्ताब के बहनोई का घर पड़ता था। बहन और बहनोई दानों मुसलमान हो चुके थे। किसी ने रास्ते में कह दिया कि चले तो हो मुहम्मद (सल्ल.) को क़त्ल करने, घर की तो ख़बर लो। तुम्हारे बहनोई और बहन दोनों मुसलमान हो चुके हैं। ये सुनना था कि तन-बदन में आग लग गई। दिल में कहा, चलकर पहले इन दोनों को ख़त्म कर दें, फिर आगे बढ़ें। यह सोचकर बहनोई के घर पहुँचे और दोनों को मारने लगे। मारते-मारते दोनों को घायल कर दिया। बहन को ख़ून निकल आया तो बोलीं, "उमर! जो तुमसे हो सके, कर डालो, लेकिन अब इस्लाम दिल से नहीं निकल सकता।"

बहन से ऐसा सुना तो उनको बड़ा आश्चर्य हुआ कि इस्लाम क़बूल करने के बाद इनसान कैसा पक्के इरादे का हो जाता है। उन्होंने हाथ रोका और

कहा कि तुम्हारे नबी पर जो कुरआन उतरा है उसमें से कुछ सुनाओ। बहन और बहनोई ने क़ुरआन सुनाया तो आँखें खुल गईं। दिल में कहने लगे – "ये तो बड़ी अच्छी बातें हैं।" तुरन्त वहीं मुसलमान हो गए।

यह देख़िए ख़ुदा की कुदरत! क़ुरैश ख़ानदान के बड़े जोशीले बहादुर को देखिए। यह बहादुर चले तो थे नबी (सल्ल.) को ख़त्म करने। रास्ते में एक कमज़ोर औरत से टकराव हो गया और यहीं मुसलमान हो गए। मुसलमान होकर अब जो चले तो जैसे-जैसे क़दम आगे बढ़ता जा रहा था वैसे-वैसे नबी (सल्ल.) से मुलाक़ात का शौक़ बढ़ता जा रहा था। शौक़ में आगे बढ़ते जा रहे थे। पीछे-पीछे बहन और बहनोई थे। वहाँ मुसलमानों को ख़बर मिल चुकी थी कि उमर नंगी तलवार लिए आ रहे हैं और दिल में बुरा इरादा है। वे सब सोच रहे थे कि देखें आज क्या होता है। हज़रत उमर (रज़ि.) दरवाज़े पर पहुँचे, आवाज़ दी। नबी (सल्ल.) आगे बढ़े। हज़रत उमर (रज़ि.) को पकड़कर कहा, "किस इरादे से आए हो?" जवाब दिया, "ईमान लाने के लिए।" यह सुनना था कि नबी (सल्ल.) ख़ुश हो गए। सभी सहाबा (रज़ि.) ख़ुश हो गए। सभी ने ऊँची आवाज़ से 'अल्लाहु अकबर' कहा। वहाँ क़ुरैश के सरदार इस इन्तिज़ार में थे कि उमर अब नबी (सल्ल.) को क़त्ल करके आ रहे होंगे, लेकिन फिर ख़बर पहुँची कि वे भी मुसलमान हो गए।

हज़रत उमर (रज़ि.) मुसलमान हुए तो उसी समय नबी (सल्ल.) से कहा चलिए, सब मुसलमान मिलकर काबा में नमाज़ पढ़ें। उस समय तक कोई मुसलमान काबा में नमाज़ नहीं पढ़ सकता था। हज़रत उमर (रज़ि.) सबको लेकर काबा में पहुँचे और नबी (सल्ल.) के साथ नमाज़ को खड़े हुए तो मक्का-भर में शोर मच गया। इस्लाम के दुश्मन दौड़ पड़े कि काबा में नमाज़ नहीं पढ़ने देंगे। हज़रत उमर (रज़ि.) अड़े हुए थे कि नमाज़ पढ़कर रहेंगे, चाहे तलवार चल जाए। शहरभर में एक शोर मच गया। अचानक एक बड़ा आदमी आया। उसने पूछा, "यह शोर-गुल कैसा है?" किसी ने बताया कि उमर मुसलमान हो गए और काबा में नमाज़ पढ़ने के लिए ज़िद कर रहे हैं। हम उनको कभी ऐसी नहीं करने देंगे।

उस बड़े आदमी ने कहा, "ख़ैर जाने भी दो, मैंने उमर को पनाह (शरण) दी।" उस समय अगर कोई बड़ा आदमी किसी के बारे में यह कह देता था तो इसका अर्थ यह होता था कि अब अगर उसे कोई कष्ट देगा तो उस बड़े आदमी से लड़ाई छिड़ जाएगी। तो जब उसने इस तरह कहा तो मक्का के सरदार चुप हो गए। सभी मुसलमान नबी (सल्ल.) के साथ नमाज़ पढ़ते रहे और दुश्मन दिल ही दिल में ग़ुस्सा होते रहे। यह पहला कारनामा था हज़रत उमर (रज़ि.) का। जैसे ही मुसलमान हुए इस्लाम का नाम ऊँचा कर दिया। कैसे बहादुर थे हज़रत उमर (रज़ि.)!

इसके बाद जब अल्लाह तआला ने नबी (सल्ल.) को हुक्म दिया कि मदीना को हिजरत कर जाएँ तो आप (सल्ल.) ने यह हुक्म सभी सहाबा (रज़ि.) को सुनाया और कहा कि एक-एक दो-दो करके जिस तरह हो सके मक्का से हिजरत कर जाओ। बाद में मैं आ जाऊँगा। इस हुक्म के मुताबिक़ मुसलमान मदीना की ओर जाने लगे। यह ख़बर दुश्मनों को पहुँची। उन्होंने रोक-टोक शुरू की। किसी को रोका, किसी का सामान छीन लिया, किसी के बच्चे रोक लिए, किसी की बीवी को जाने न दिया, लेकिन जब हज़रत उमर (रज़ि.) चले तो उन्होंने पुकारकर कहा, "ऐ क़ुरैश के लोगो! मैं तुम्हारे शहर से जा रहा हूँ और मेरे साथ मेरे भाई-भतीजे और दोस्त सब हैं, अब तुम मुझे रोको तो जानूँ।" उमर (रज़ि.) ने पूकार-पुकारकर कहा, लेकिन किसी की हिम्मत नहीं हुई कि उन्हें रोक सकता। हज़रत उमर (रज़ि.) मदीना चले गए। इसके कुछ दिनों बाद प्यारे नबी (सल्ल.) भी मदीना पहुँचे।

नबी (सल्ल.) मदीना पहुँचे तो एक दिन यह मशविरा होने लगा कि जब नमाज़ का वक़्त हो तो किसी तरह नमाज़ियों को इकट्ठा किया जाए। किसी ने कहा कि जिस तरह दूसरे मज़हबवालों के यहाँ शंख फूँका जाता है, यही तरीक़ा अपनाया जाए। अभी कोई राय बनी नहीं थी कि हज़रत उमर (रज़ि.) आ गए। पूछा क्या मशविरा हो रहा है? नबी (सल्ल.) ने बताया तो हज़रत उमर (रज़ि.) ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मैंने (स्वप्न) में देखा है कि नमाज़ से पहले कोई इस तरह पुकार रहा है (अल्लाहु अकबर, अल्लाहु अकबर, ला इला-ह इल्लल्लाह ....) अभी वे यह कह ही रहे थे कि दो साहब और आए।

उन्होंने कहा कि यही ख़ाब (स्वप्न) हमने भी देखा है। हुज़ूर (सल्ल.) ने यह सुना तो इन तीनों सहाबियों की राय को पसन्द किया और हज़रत बिलाल (रज़ि.) से कहा कि यही अलफ़ाज़ (शब्द) पुकारो। ये अलफ़ाज़ वही हैं जो अज़ान में कहे जाते हैं। इस तरह हज़रत उमर (रज़ि.) को दूसरी बुज़ुर्गी यह हासिल हुई कि उन्होंने अज़ान के लिए जैसे कहा था उसी तरह अज़ान का हुक्म हुआ।

मुसलमानों के मदीना आ जाने के बाद इस्लाम-दुश्मनों से लड़ाइयाँ शुरू हो गईं। दुश्मन सेना लेकर मदीने पर चढ़ आते, घमासान युद्ध होता और अन्त में दुश्मन हारकर भाग जाते। इस तरह मक्का के क़ुरैश से भी लड़ाइयाँ लड़ी जाती रहीं और दूसरे उन लोगों से जो मदीना के आस-पास रहते थे। ये यहूदी थे और मक्कावालों से मिले हुए थे। ऐसी सभी लड़ाइयों में हज़रत उमर (रज़ि.) नबी (सल्ल.) के साथ रहे और बहादुरी के साथ दुश्मनों का मुक़ाबला करते रहे। फिर दुश्मनों का ज़ोर टूटा। दुश्मनों का ज़ोर टूटा तो नबी (सल्ल.) ने बढ़कर मक्का पर अधिकार जमा लिया। मक्का फ़तह होते ही सारे अरब में इस्लाम की धाक बैठ गई। सारे अरब में इस्लामी हुकूमत क़ायम हो गई। इस हुकूमत को प्यारे नबी (सल्ल.) ने चलाकर दिखाया। आप (सल्ल.) के बाद हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ख़लीफ़ा हुए। उनके बाद हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) ख़लीफ़ा हुए। हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) के समय में बड़े-बड़े देश फ़तह हुए। ईरान पर विजय प्राप्त हुई, शाम पर विजय प्राप्त हुई। बैतुल-मक़दिस पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। दूर-दूर तक इस्लामी हुकूमत फैल गई। फिर तो हज़रत उमर (रज़ि.) ने ऐसी अच्छी व्यवस्था की कि आज तक आपके न्याय और इनसाफ़ की धूम है। मुसलमान तो मुसलमान, ग़ैरमुस्लिमों ने भी उनकी हुकूमत की तारीफ़ की है। हमारा देश हिन्दुस्तान जब अंग्रेज़ों की ग़ुलामी से सन 1947 ई. में आज़ाद हुआ था तो यहाँ के सबसे बड़े ग़ैर-मुस्लिम नेता गाँधी जी ने कांग्रेसियों को मशविरा दिया था कि अब तुम अबू बक्र और उमर (रज़ि.) के ढंग पर हुकूमत करोगे तो कामयाब रहोगे, नहीं तो नाकाम हो जाओगे।

हज़रत उमर (रज़ि.) ने किस तरह इस्लामी हुकूमत की व्यवस्था की इसे हम आगे बयान करेंगे। इन्शा-अल्लाह तआला।

यह बात तो हम बता ही चुके हैं कि हज़रत उमर (रज़ि.) ख़लीफ़ा थे। ख़लीफ़ा का मतलब आप जानते ही हैं कि जो व्यक्ति अल्लाह के हुक्मों के मुताबिक़ हुकूमत को चलाए वह ख़लीफ़ा कहलाता है। नबी (सल्ल.) के बाद इस्लामी हुकूमत के पहले ख़लीफ़ा हज़रत अबू बक्र रज़ि.) थे। उनके बाद दूसरे ख़लीफ़ा हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.)।

हज़रत अबू बक्र ने ख़िलाफ़त का काम अल्लाह के हुक्मों के मुताबिक़ उसी तरह किया जिस तरह नबी (सल्ल.) ने बताया, सिखाया और करके दिखाया था। यही ढंग हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) का था। फिर जिस तरह हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) को बैतुलमाल (इस्लामी ख़ज़ाना) से "गुज़ारा" मिलता था उसी तरह हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) को भी मिलता था। "गुज़ारा" का मतलब यह है कि इतनी रक़म जिससे एक साधारण आदमी अपने बाल-बच्चों के साथ गुज़र-बसर कर सके।

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने अपने लिए गुज़ारे की जो रक़म निश्चित कराई थी वह इतनी थी कि उसमें बड़ी कठिनाई से गुज़र-बसर होती थी। महीने-महीने कुछ घटता तो ज़रूर था लेकिन बढ़ता न था।

बस उतनी ही रक़म हज़रत उमर (रज़ि.) को मिलती थी। ज़रूरत से अधिक अपने ऊपर ख़र्च करना पसन्द न करते थे और उसका कारण यह था कि वह बैतुलमाल को अपना ख़ज़ाना नहीं समझते थे, जैसे बादशाह समझा करते हैं, बल्कि ख़लीफ़ा तो बैतुलमाल को जनता की अमानत समझता है, और अमानत में ख़ियानत हराम है। यानी उसमें से जैसी इच्छा हो वैसे ख़र्च किया जाए यह ठीक नहीं, बल्कि अपने ऊपर कम से कम ख़र्च किया जाए और अल्लाह के बन्दों पर ज़्यादा और अल्लाह के दीन (धर्म) को फैलाने में सबसे ज़्यादा ख़र्च किया जाना चाहिए। हज़रत उमर (रज़ि.) का यही तरीक़ा था। इस बारे में एक वाक़िआ सुनिए। बड़ा दिलचस्प और नसीहतवाला है। एक बार एक देश फ़तह हुआ तो उस जीत में बहुत-सा माल बैतुलमाल में आया। उसमें कुछ कपड़ा भी था। यह कपड़ा मुसलमानों में बाँट दिया गया। हज़रत उमर (रज़ि.) को उनके हिस्से का कपड़ा मिला। जुमा के दिन लोगों ने देखा कि हज़रत उमर (रज़ि.)

उसी कपड़े का कुरता पहने हुए हैं। आप वही कुरता पहने हुए जुमा का ख़ुत्बा देने के लिए मेम्बर की तरफ़ बढ़े कि एक आदमी ने टोका–

"हरगिज़ नहीं, आप उस समय तक हमारे इमाम नहीं हो सकते जब तक कि आप यह इतमीनान न दिला दें कि जो कपड़ा आपको मिला उसमें आपका यह कुरता कैसे तैयार हो गया?"

यह सुनकर हज़रत उमर (रज़ि.) ने बुरा नहीं माना। अरे भाई, बुरा वे क्यों मानते! वे बादशाह या मनमाने नवाब कब थे। वे तो मुसलमानों के ख़लीफ़ा थे। मुसलमानों को सन्तुष्ट करना उनका फ़र्ज़ था। कहा कि इसका जवाब मेरा बेटा देगा।

आप यह भी समझ लीजिए कि सच बात क्या थी। बात यह थी कि हज़रत उमर (रज़ि.) का क़द लम्बा था। जितना-जितना कपड़ा लोगों को मिला था उसमें उनका कुरता नहीं बन सकता था। तो जिस आदमी ने हज़रत उमर (रज़ि.) को टोका, उसे यह परेशानी हुई कि फिर हज़रत उमर (रज़ि.) का कुरता कैसे तैयार हो गया। उनको बैतुलमाल से इतने पैसे तो मिलते नहीं कि कपड़ा किसी से ख़रीद लिया हो। तौबा-तौबा ऐसा तो नहीं कि अपने लिए अधिक रख लिया हो।

भई यह शक था उस आदमी का, और आप देखते हैं कि ऐसा कुछ लोग करते भी हैं जिनके हाथ में कुछ अधिकार दे दिया जाता है। लेकिन हज़रत उमर (रज़ि.) तो अल्लाह से बहुत ही डरनेवाले थे, वे ऐसा किस तरह कर सकते थे। अब सुनिए कि हज़रत उमर (रज़ि.) के लायक़ बेटे हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि.) आए तो उन्होंने बताया–

"साहिबो! वालिद साहब को मैंने अपने हिस्से का कपड़ा दे दिया था।"

यह सुनकर टोकनेवाले आदमी ने कहा, "हाँ अब आप इमामत कर सकते हैं।"

ज़रा सोचिए तो क्या कोई किसी छोटे से छोटे हाकिम को भी इस तरह टोक सकता है।

दूसरे ख़लीफ़ा हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) के बारे में यह बात आप जान चुके कि वे हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) की तरह इस्लामी ख़ज़ाने (बैतुलमाल) से उतना ही वेतन पाते थे जिसमें उनका गुज़र-बसर हो सके, ठाट के साथ नहीं बल्कि एक साधारण व्यक्ति की तरह। अब हम यह बताएँगे कि दूसरे ख़लीफ़ा ने हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) के बाद किस तरह इस्लामी हुकूमत को सँभाला। इस बात को समझने से पहले आप यह भी समझ लीजिए कि हुकूमत करने के कौन-कौन से तरीक़े हैं?

(1) व्यक्तिगत शासन

व्यक्तिगत शासन (शख़्सी हुकूमत) का अर्थ है एक व्यक्ति का शासन। यानी कोई एक आदमी अपने को देश का मालिक समझे और दूसरों से अपने को मालिक कहलवाए। किसी बात के सम्बन्ध में उसका क़ानून चले। वह जैसा चाहे दूसरों के लिए क़ानून बनाए। लेकिन स्वयं किसी क़ानून का पाबन्द न हो, ख़ज़ाने का मालिक भी वही बन बैठे। जो चाहे और जैसे चाहे ख़र्च करे, कोई टोकनेवाला न हो। ऐसे आदमी को बादशाह या राजा कहते हैं। बादशाह होने में ऐसा भी होता है कि बादशाह के बाद उसका बेटा या कोई उसके घर का आदमी बादशाह बनता है, लेकिन अगर कोई आदमी बादशाह का बेटा या ख़ानदानी और रिश्तेदार न हो, बल्कि प्रजा में से हो और वह किसी तरह ज़बरदस्ती शासन पर क़ब्ज़ा कर ले और अपना हुक्म चलाने लगे तो ऐसे आदमी को 'डिक्टेटर' कहते हैं।

बादशाह और डिक्टेटर अपनी फ़ौज और अपने जत्थे के लोगों के बल पर मनमानी करते हैं। अगर किसी देश का बादशाह कुछ अच्छा होता है तो प्रजा को आराम मिल जाता है, बुरा होता है तो प्रजा की बुरी हालत हो जाती है। मज़ा करते और ख़ुशी मनाते हैं वे लोग जो बादशाह या डिक्टेटर के पिट्ठू होते हैं। उन पिट्ठुओं को चाहे आप वज़ीर कह लीजिए या नवाब।

(2) प्रजातांत्रिक शासन

प्रजातांत्रिक शासन (जमहूरी हुकूमत) का अर्थ है कि देश में जनता का शासन हो यानी जनता-राज या प्रजा-राज, यानी देश के रहनेवाले मिल-जुलकर ख़ुद ही राज करें। इसका यह तरीक़ा होता है कि देश के निवासी अपने देश के ऐसे लोगों को चुन लेते हैं जिनको वे राज-काज में होशियार समझते हैं। ये चुने हुए लोग अपना एक अध्यक्ष चुन लेते हैं। उन्हीं में से अलग-अलग कामों के ज़िम्मेदार चुन लिए जाते हैं। इनको 'वज़ीर' (मंत्री) कहते हैं और इन सब पर एक बड़ा वज़ीर भी चुन लिया जाता है जिसे 'वज़ीरे आज़म' (प्रधानमंत्री) कहते हैं। हमारे देश भारत में भी इसी प्रकार का प्रजातांत्रिक शासन है। यहाँ भी सबसे बड़ा वज़ीरे आज़म (प्रधानमंत्री) कहलाता है। आप जानते हैं, इस तरीक़े को चुनाव कहते हैं। चुनाव द्वारा जो लोग चुने जाते हैं वे देश के लिए क़ानून बनाते हैं और जिस बात को पसन्द करनेवाले अधिक होते हैं उसी बात को लागू कर दिया जाता है।

(3) ख़िलाफ़त

अल्लाह के आदेशानुसार जिस प्रकार प्यारे नबी (सल्ल.) ने शासन करने का तरीक़ा बताया, समझाया और करके दिखाया, उसी प्रकार शासन करने को 'ख़िलाफ़त' कहते हैं और ऐसी हुकूमत को 'इस्लामी हुकूमत' कहते हैं। इसका तरीक़ा यह होता है कि अल्लाह के बन्दे अपने में से ऐसे व्यक्ति को चुन लेते हैं जो सबसे अधिक दीनदार, समझदार और ख़ुदा से डरनेवाला होता है तथा सबसे अधिक अल्लाह के हुक्मों को समझनेवाला और प्यारे रसूल (सल्ल.) की पैरवी करनेवाला होता है। इस तरह चुने जानेवाले को 'ख़लीफ़ा' कहते हैं।

ख़लीफ़ा किसी चीज़ का मालिक नहीं होता। वह अपना हुक्म नहीं चला सकता, बल्कि अल्लाह का हुक्म इस प्रकार चलानेवाला होता है जैसे प्यारे नबी (सल्ल.) ने बताया। वह इस्लामी ख़ज़ाने का भी मालिक नहीं होता। ख़िलाफ़त उसकी जायदाद और जागीर नहीं होती कि उसके बाद उसका बेटा या कोई घरवाला ख़लीफ़ा बन बैठे, बल्कि जिसको सभी मुसलमान चुनें या फिर

ख़लीफ़ा स्वयं किसी को अपना जानशीन (उत्तराधिकारी) बना जाए, लेकिन वह जानशीन उनके घर का या रिश्तेदार न हो और उसे मुसलमान 'ख़लीफ़ा' मान भी लें।

अब देखिए, प्यारे नबी (सल्ल.) के बाद मुसलमानों ने हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) को ख़लीफ़ा चुना। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने समझदार और दीनदार लोगों से मशविरा करके अपनी ज़िन्दगी में ही अपने बाद होनेवाला ख़लीफ़ा हज़रत उमर (रज़ि.) को चुन दिया। इस तरह हज़रत उमर (रज़ि.) को खिलाफ़त मिली।

हज़रत उमर (रज़ि.) बहुत समझदार और नेक सहाबी थे। वे यह समझते थे कि शैतान सिर्फ़ अल्लाह के नबी को नहीं बहका सकता लेकिन और सबको बहका सकता है। वे यह भी जानते थे कि मासूम (निर्दोष) सिर्फ़ अल्लाह के नबी होते हैं और कोई इनसान मासूम नहीं हो सकता। यानी नबी के अलावा दूसरे लोगों से गुनाह भी हो सकता है और भूल-चूक भी। हज़रत उमर (रज़ि.) ने अपनी मदद के लिए बड़े दीनदार और समझदार लोगों की एक कमेटी बनाई। उसका नाम 'मजलिसे शूरा' रखा यानी ख़लीफ़ा को राय और मशविरा देनेवाली कमेटी। इस मजलिसे शूरा के मशहूर लोग ये थे –

हज़रत उसमान (रज़ि.), हज़रत अली (रज़ि.), हज़रत अब्दुर्रहमान बिन औफ़ (रज़ि.), हज़रत मआज़ बिन जबल (रज़ि.), हज़रत उबैय बिन काब (रज़ि.) और हज़रत ज़ैद बिन साबित (रज़ि.)।

ये सभी ऐसे बुज़ुर्ग थे जो प्यारे नबी (सल्ल.) के प्यारे साथियों में बडे समझदार माने जाते थे। इनके अतिरिक्त और भी थे जैसे हज़रत अबू उबैदा बिन जर्राह (रज़ि.), हज़रत अम्र बिन आस (रज़ि.), हज़रत जाबिर (रज़ि.); हज़रत तलहा (रज़ि.), हज़रत सअद बिन वक़्क़ास (रज़ि.) आदि, लेकिन ये और इनके जैसे दूसरे बुज़ुर्ग इस्लामी फ़ौज को लेकर अधिकतर दुश्मनों से लड़ने भेजे जाते थे। इसलिए जब ये मदीना में होते तो उनको सलाह-मशविरे के लिए बुला लिया जाता था।

जब कोई बहुत महत्वपूर्ण बात सामने आ जाती तो मुसलमानों का आम इजलास होता जिसमें बहुत-से लोग सम्मिलित होते। सलाह-मशविरा का तरीक़ा यह था कि हज़रत उमर (रज़ि.) सबसे पहले यह पूछते, "भाइयो! इस बात के बारे में क़ुरआन में कोई हुक्म हो तो बताओ, प्यारे रसूल (सल्ल.) की कोई बात हो तो बताओ।" लोग पहले क़ुरआन और सुन्नत में वह खोजते। अगर वहाँ वह बात न मिलती तो अपनी-अपनी समझ के मुताबिक़ सोचकर राय देते। फिर सारे मुसलमान या अधिकतर मुसलमान जो फ़ैसला देते वही मान लिया जाता और फिर हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) उसी बात पर जम जाते, लेकिन शर्त यह थी कि वह बात क़ुरआन और सुन्नत के ख़िलाफ़ न हो।

इस विषय में एक मज़ेदार बात सुनिए। एक बार हज़रत उमर (रज़ि.) ने यह जानना चाहा कि लोग मुझे अल्लाह से डरते हुए मशविरा देते हैं या मुझसे डरते और चापलूसी करते हैं। यही सोचकर एक दिन बोले, "सुनो अगर मैं टेढ़ा हो जाऊँ यानी ग़लत बातें करने लगूँ तो तुम लोग क्या करोगे?" यह सुनकर एक साहब खड़े हुए और तलवार निकालकर कहा, "इस तलवार से आपको सीधा कर दिया जाएगा।" यह जवाब सुनकर हज़रत उमर (रज़ि.) बहुत ख़ुश हुए और मुसलमानों की तारीफ़ की।

ख़ैर ये तो बड़े लोग थे। एक बार हज़रत उमर (रज़ि.) तक़रीर कर रहे थे। तक़रीर करते-करते एक बात ऐसी कह दी कि जो नबी (सल्ल.) ने नहीं कही थीं; तो एक बुढ़िया ने डाँटा, "उमर! जिस बात को प्यारे रसूल (सल्ल.) ने नहीं कहा तो फिर आप कौन हैं कहनेवाले?"

बुढ़िया से यह जवाब सुना तो हज़रत उमर (रज़ि.) ने उसकी प्रशंसा की और कहा कि जब तक तुममें ऐसे लोग रहेंगे, तुम्हें शैतान कभी बहका न सकेगा। एक बार एक आदमी ने डाँटा, "उमर अल्लाह से डरो!" उसकी इस बात पर लोगों ने बुरा माना कि अगर ख़लीफ़ा ही अल्लाह से न डरेगा तो फिर कौन डरेगा। लेकिन हज़रत उमर (रज़ि.) ने कहा, "इसे कहने दो, अगर मुझे लोग न टोकेंगे तो लोग बेकार हैं और अगर हम न मानें तो हम बेकार।"

इन कुछ मिसालों से आपने जान लिया होगा कि इस्लामी हुकूमत

(शासन) का ख़लीफ़ा कैसा होता है और हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) कैसे अच्छे ख़लीफ़ा थे। अल्लाह उनसे राज़ी हो!

दूसरे ख़लीफ़ा के आमिल (गवर्नर)

आमिल का अर्थ है – गवर्नर। गवर्नर उस व्यक्ति को कहते हैं जो सरकार की तरफ़ से किसी सूबे या प्रान्त का इन्तिज़ाम करनेवाला हो। एक सूबे में बहुत-से ज़िले होते हैं। हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) ने भी इस्लामी हुकूमत के दस-दस, बारह-बारह, पन्द्रह-पन्द्रह, बीस-बीस ज़िलों के सूबे बनाए थे। वे उन सूबों का गवर्नर एक अच्छे आदमी को बनाते थे।

यह तो हम सब जानते हैं कि प्यारे नबी (सल्ल.) के प्यारे साथी यानी सारे सहाबा (रज़ि.) अच्छे लोग थे। हज़रत उमर (रज़ि.) जब किसी सूबे में कोई गवर्नर नियुक्त करना चाहते तो सबसे पहले प्यारे सहाबा (रज़ि.) ही में ऐसे लोग ढूँढ़ते, लेकिन सहाबा में अधिकतर ऐसे बुज़ुर्ग थे जो ठाट-बाट को पसन्द नहीं करते थे। अतः हज़रत उमर (रज़ि.) उनमें से जब किसी को गवर्नर बनाते तो वे बुज़ुर्ग असमर्थता व्यक्त करते, यानी कहते कि "हमें गवर्नर न बनाइए, हमसे गवर्नरी न हो सकेगी। हम अल्लाह से बहुत डरते हैं। हमें डर है कि हम इनसाफ़ न कर सकेंगे।" इस तरह की बातें करके वे गवर्नरी से बचना चाहते थे। जी हाँ! इतना बड़ा पद क़बूल न करते। लेकिन हज़रत उमर (रज़ि.) उन्हें समझाते कि इस्लामी हुकूमत का काम चलाने में अगर आप लोग ही साथ न देंगे तो फिर दुनियादार लोग गवर्नर बनेंगे और वे लोग इस्लामी हुकूमत में बुरे कामों का नमूना पेश करेंगे। हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) की इस बात का जवाब प्यारे सहाबा (रज़ि.) न दे पाते और उन्हें गवर्नरी स्वीकार करनी पड़ती। वे गवर्नर बनकर जाते और अपने-अपने सूबों में शासन तो करते, लेकिन उनको देखकर लोग ये नहीं समझ पाते कि ये गवर्नर साहब हैं। इसका कारण यह था कि ये सहाबा (रज़ि.) साधारण लिबास में रहते थे। हज़रत सलमान फ़ारसी (रज़ि.) को एक सौदागर ने देखा तो मज़दूर समझकर उनसे कहा, "मेरा ये सामान घर तक पहुँचा दो।" हज़रत सलमान फ़ारसी (रज़ि.) ने उसका सामान घर तक पहुँचा दिया। रास्ते में लोगों ने पहचान लिया और सलाम किया तो सौदागर घबराया, लेकिन हज़रत

सलमान (रज़ि.) ने उसको इतमीनान दिलाया कि मुझे सेवा करने के लिए गवर्नर बनाया गया है।

एक और सहाबी थे जिनका नाम सईद बिन आमिर था। उन्हें हिम्स सूबे का गवर्नर बनाया गया। उन्होंने पहले इनकार किया लेकिन जब हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) ने वह बात कही जो हमने ऊपर लिखी है कि जब नबी (सल्ल.) के प्यारे साथी इस्लामी हुकूत का काम न करेंगे तो कैसे काम चलेगा, तो स्वीकार कर लिया। हिम्स के गवर्नर बनकर गए। बड़ा अच्छा इन्तिज़ाम किया। एक बार हज़रत उमर (रज़ि.) ने दौरा किया। हिम्स भी गए। वहाँ जाकर एक क्लर्क से कहा कि हिम्स के मुहताजों की लिस्ट बनाकर लाओ। क्लर्क लिस्ट बना लाया। उस में पहला नाम था 'सईद'। हज़रत उमर (रज़ि.) ने पूछा, "ये सईद कौन?" क्लर्क ने बताया – "ये सईद बिन आमिर हैं, हमारे और आपके गवर्नर।"

हज़रत उमर (रज़ि.) को बड़ा आश्चर्य हुआ कि हमारा गवर्नर और मुहताज, जबकि गवर्नर को अच्छा वेतन मिलता है। क्लर्क को उन्होंने आश्चर्य से देखा तो कहा – "अमीरुल मोमिनीन! वे वेतन नहीं लेते। यह सुनकर हज़रत उमर (रज़ि.) ने एक हज़ार दीनार की थैली उनके घर भेजी तो वे घबरा गए और बीवी से कहा कि उमर (रज़ि.) ने मेरे घर दुनिया भेजी है। फिर उन दीनारों को उसी समय ख़ैरात (दान) कर दिया। यह सुनकर हज़रत उमर (रज़ि.) रो पड़े और उनके लिए अल्लाह से दुआ की और कहा कि जब तक इस्लामी हुकूमत में ऐसे लोग हैं अल्लाह ख़ुश रहेगा।

ऐसे ही एक और बुज़ुर्ग सहाबी थे। जब उन्हें गवर्नर बनाया जाता तो वे इन्तिज़ाम तो बड़ा अच्छा करते, लेकिन खाते अपना थे। एक सहाबी को जब गवर्नर बनाकर भेजा तो उस समय वे एक लौंडी को लेकर गए और अपने ख़च्चर (टट्टू) पर सवार थे, फिर जब वे वापस आए तो उस समय भी यही लेकर लौटे। हज़रत उमर (रज़ि.) ने हाल पूछा तो कहा इससे अधिक मुझे किसी चीज़ की ज़रूरत ही नहीं थी। ऐसे ही बुज़ुर्गों में से हज़रत अम्मार बिन यासिर (रज़ि.), अबू उबैदा (रज़ि.) और मआज़ (रज़ि.) बिन जबल भी थे। एक बार एतिराज़ किया गया कि उमर (रज़ि.) ऐसे बुज़ुर्गों को दुनियादारी में फँसाते हैं। हज़रत उमर

(रज़ि.) ने जवाब दिया कि यह दुनियादारी नहीं है। दुनियादारी तो तब हो कि ये लोग ख़ुदा से न डरें और गवर्नरी पाकर ऐश करें। प्यारे सहाबा (रज़ि.) तो प्यारे नबी (सल्ल.) की पैरवी करनेवाले हैं।

यह कहकर सहाबा (रज़ि.) को इकट्ठा किया। उनसे कहा, "अगर अपने लोग ही इस्लामी हुकूमत का काम न करेंगे तो काम कैसे चलेगा?" हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि.) ने जवाब दिया – "आप घबराएँ नहीं, हम आपकी मदद करेंगे।" हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि.) ने यह कहा तो सभी सहाबा चुप हो गए और फिर हज़रत उमर (रज़ि.) ने हज़रत अबू उबैदा, हज़रत मआज़ (रज़ि.), हज़रत हकीम बिन हज़्म (रज़ि.) को गवर्नर बनाया और उन सबको गवर्नरी स्वीकार करनी पड़ी, लेकिन उन बुज़ुर्गों ने वेतन लेने से इनकार कर दिया और कहा कि हम सिर्फ़ अल्लाह के लिए यह काम करेंगे।

हज़रत उमर (रज़ि.) इन बुज़ुर्गों को गवर्नर बनाते और दूसरे बड़े-बड़े पद देते थे, लेकिन जानते थे कि शैतान इनसान का सबसे बड़ा दुश्मन है और बड़ा ही चालाक भी। इसलिए इन बुज़ुर्गों के काम की देख-भाल भी करते थे। किसी से थोड़ी-सी ग़लती होती तो तुरन्त टोकते। हज़रत सअ़द बिन वक़्क़ास (रज़ि.) ने किसी ज़रूरत से एक महल बनवाया था। यह ख़बर हज़रत उमर (रज़ि.) को हुई तो कहा – "अल्लाह की क़सम! यह महल गवर्नर और जनता के बीच रुकावट डाल देगा।" हज़रत मुहम्मद बिन मुस्लिमा अनसारी (रज़ि.) को जाँच के लिए भेजा। हज़रत मुहम्मद बिन मुस्लिमा अनसारी गए। देखा तो सचमुच महल बना हुआ है और दरवाज़े पर दरबान (संतरी) खड़ा है। यह देखते ही हज़रत मुहम्मद बिन मुस्लिमा अनसारी ने महल को आग लगा दी और हज़रत सअ़द बिन वक़्क़ास (रज़ि.) को जवाब देने के लिए मदीना आना पड़ा। जबकि ये बुज़ुर्ग सहाबी वे थे जो प्यारे नबी (सल्ल.) के मामूँ, बहुत बड़े सिपहसालार और ईरान को जीतनेवाले थे। यानी ईरान देश इन्होंने ही फ़तह किया था। एक बार हज़रत उमर (रज़ि.) ने अपने गवर्नरों के बीच भाषण दिया – "साहिबो! गवर्नर इसलिए नहीं भेजे जाते कि प्रजा के गालों पर तमाचे मारें, उनका माल छीनें, बल्कि इसलिए भेजे जाते हैं कि वे प्यारे नबी (सल्ल.) का तरीक़ा लोगों को सिखाएँ, तो अगर किसी गवर्नर ने ऐसा न किया तो मैं उसे सज़ा दूँगा।"

जी हाँ! सज़ा देने को कहा और एक बार एक गवर्नर से ऐसी ग़लती हो गई तो उसे सज़ा भी दी। आप सुन लीजिए, नहीं तो आप न जाने क्या समझें कि प्यारे सहाबी से क्या भूल हुई। हुआ यह कि एक मशहूर गवर्नर ने किसी आदमी को कोड़े मारे। उसने मदीना आकर शिकायत कर दी। गवर्नर साहब बुलाए गए। मुक़द्दमा हुआ तो मालूम हुआ कि उस आदमी पर ज़्यादती हुई। बस फिर क्या था, हुक्म दिया कि यह आदमी भी गवर्नर साहब को कोड़े मारे।

अरे तौबा! एक हलचल मच गई कि एक मामूली आदमी गवर्नर को कोड़े मारेगा और वह गवर्नर भी कौन जो प्यारे रसूल (सल्ल.) का प्यारा सहाबी, बल्कि जिसके बारे में नबी (सल्ल.) ने कहा था कि वह बड़ा समझदार और योग्य इनसान है। तो सचमूच लोग देखने आए। बहुत-से लोगों ने उन बुज़ुर्ग सहाबी की सिफ़ारिश की, लेकिन हज़रत उमर (रज़ि.) नहीं माने। उस आदमी ने यह इनसाफ़ देखा तो रो पड़ा और कहा कि ऐ अमीरुल मोमिनीन! मैं माफ़ करता हूँ।

माफ़ी का नाम सुनकर हज़रत उमर (रज़ि.) बहुत ख़ुश हुए। फिर मुसलमानों ने उस आदमी को बहुत-सा इनाम दिया। इतना कि वह पुकार उठा कि "इतमीनान इस्लामी शासन के अन्दर है।"

इस प्रकार बहुत-सी घटनाएँ हैं। एक गवर्नर हज़रत अयाज़ बिन ग़नम (रज़ि.) के बारे में है कि जब हज़रत उमर (रज़ि.) ने सुना कि वे बारीक और मुलायम कपड़े पहनते हैं और उनके घर के दरवाज़े पर दरबान रहता है, तो मुहम्मद बिन मुस्लिमा (रज़ि.) को भेजा। वे मिस्र गए और वहाँ से हज़रत अयाज़ को जिस हाल में वे थे उसी हालत में पकड़कर लाए। हज़रत उमर (रज़ि.) ने उनको समझाया कि प्यारे भाई! तुम नबी (सल्ल.) के प्यारे सहाबी हो, अगर तुम ज़रा भी ऐश की तरफ़ झुकोगे तो ठीक नहीं, और फिर तुम्हारे बाप का नाम ग़नम इसलिए था कि वह बकरियाँ चरानेवाले थे। अच्छा, जाओ बकरियाँ चराओ। हज़रत अयाज़ ने बकरियाँ चराईं और जब अल्लाह से तौबा की तो फिर उनको गवर्नरी पर भेजा।

ऊपर हमने बहुत ही कम घटनाएँ बताई हैं। बताना यह है कि हज़रत

उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) दीनदार और ख़ुदा से डरनेवालों ही को बड़े-बड़े (पद) देते थे और फिर उनकी निगरानी भी करते रहते थे। इसी तरह दूसरे बड़े अधिकारी यानी क़ाज़ी (जज), वज़ीरे ख़ज़ाना (वित्तमंत्री), सिपहसालार, मीर-मुंशी आदि भी ऐसे लोगों को बनाते थे जो दीनदार होते थे। अतः मशहूर क़ाज़ी शुरैह हज़रत उमर (रज़ि.) ही के ज़माने में हुए हैं। मशहूर सिपहसालार अबू उबैदा बिन जर्राह (रज़ि.), सअद बिन वक़्क़ास (रज़ि.), अम्र बिन आस (रज़ि.), नोमान बिन मुक़रन (रज़ि.), मुसना शैबानी (रज़ि.) और बैतुलमाल के नाज़िम (व्यवस्थापक) हज़रत अबू उबैदा (रज़ि.) और हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि.)। मीर-मुंशी भी ख़ूब जाँच-परखकर रखते। हज़रत उमर (रज़ि.) की इस जाँच-परख के सिलसिले में एक उदाहरण सुनिए –

हज़रत उमर (रज़ि.) की ख़िलाफ़त के बहुत पहले की बात है, जब नबी (सल्ल.) ज़िन्दा थे। एक बार नबी (सल्ल.) के पास कहीं से एक ख़त आया। नबी (सल्ल.) लिखे-पढ़े नहीं थे। आप (सल्ल.) ने पूछा कि कौन इस ख़त का जवाब लिख सकता है? एक सहाबी की ज़बान से निकला – "हुज़ूर! मैं।" ये सहाबी थे हज़रत अब्दुल्लाह बिन अरक़म (रज़ि.)। वे जवाब लिखकर लाए तो नबी (सल्ल.) ने बहुत पसन्द किया। यह बात हज़रत उमर (रज़ि.) को याद रह गई। जब आप ख़लीफ़ा हुए तो हज़रत अब्दुल्लाह बिन अरक़म (रज़ि.) को इस्लामी हुकूमत का मीर-मुंशी बना दिया। आप समझे क्यों? दो बातें उनमें देखीं – एक तो यह कि उन्होंने बड़ा अच्छा जवाब लिखा और फिर नबी (सल्ल.) ने जवाब को पसन्द भी किया था। भला हज़रत उमर (रज़ि.) ऐसे व्यक्ति को पसन्द क्यों न करते जिसे नबी (सल्ल.) ने पसन्द किया हो। इस तरह हज़रत उमर (रज़ि.) जिस व्यक्ति में जो योग्यता देखते उसकी क़द्र करते और उसमें वे उम्र का भी कम ख़याल करते थे। हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि.) की उम्र 12, 13 साल की थी, लेकिन वे बहुत समझदार थे, उनको बड़े-बड़े सहाबा के बीच बैठाते थे और जब वे कोई अच्छी बात कहते तो शाबाशी देते और उनका दिल बढ़ाते थे।

हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) के शासनकाल में अदालतों का इन्तिज़ाम भी बहुत अच्छा था। अदालतों से बड़ा अच्छा इनसाफ़ किया जाता था। किसी

पर ज़ुल्म नहीं होता था। सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि अदालत से बहुत जल्द फ़ैसला होता था और किसी पर कोई दबाव न डाला जाता था। अदालत के क़ाज़ी बड़े दीनदार और ख़ुदा से डरनेवाले लोग नियुक्त किए जाते थे जो एकदम सच फ़ैसला करते। न किसी बड़े आदमी का दबाव मानते और न ही रुपये-पैसे के लालच में ग़लत फ़ैसला करते। हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) ऐसे अच्छे लोगों को ढूँढ़-ढूँढ़कर क़ाज़ी बनाते थे और उनको बड़े-बड़े वेतन भी देते थे। क़ाज़ियों को नियुक्त करने में बिलकुल वही तरीक़ा अपनाते जो प्यारे नबी (सल्ल.) का तरीक़ा था और जिसपर हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) भी अमल करते थे। क़ाज़ी नियुक्त करते समय उनकी जाँच करते, जिसको क़ुरआन अधिक याद होता और वह क़ुरआन को अच्छी तरह समझता और उसपर अमल करता उसे क़ाज़ी बनाते थे। इसके बाद उसकी निगरानी भी करते रहते थे। समय-समय पर निर्देश भी देते रहते थे।

एक बार एक मशहूर सहाबी हज़रत उबैय बिन काब (रज़ि.) से ख़ुद ख़लीफ़ा को मुक़द्दमा लड़ना पड़ा। हज़रत उमर (रज़ि.) हज़रत उबैय बिन काब (रज़ि.) के साथ मदीना में क़ाज़ी हज़रत ज़ैद बिन साबित (रज़ि.) की कचहरी में गए। हज़रत ज़ैद बिन साबित (रज़ि.) ने ख़लीफ़ा को देखा तो अदब के ख़याल से स्वागत के लिए उठे। हज़रत उमर (रज़ि.) ने टोका कि "ऐ ज़ैद! यह तुमने इनसाफ़ के ख़िलाफ़ किया।" इसके बाद जब मुक़द्दमा शुरू हुआ तो हज़रत उमर (रज़ि.) से क़सम ली जाने लगी तो फिर हज़रत ज़ैद (रज़ि.) ने कहा कि ख़लीफ़ा से क़सम न ली जाए तो फिर टोका कि यह तुमने दूसरी नाइनसाफ़ी की।

इस टोकने का मतलब यह था कि अदालत में हर व्यक्ति बराबर के इनसाफ़ का हक़दार है।

क़ाज़ियों की अक़्ल की जाँच के लिए हम एक वाक़िआ लिखते हैं जिससे पता चलता है कि हज़रत उमर (रज़ि.) क़ाज़ियों की जाँच किस तरह करते थे और जो व्यक्ति उनकी जाँच में पूरा उतरता था उसका कितना ख़याल रखते थे।

वाक़िआ यूँ है कि एक बार हज़रत उमर (रज़ि.) ने एक व्यक्ति से घोड़ा

ख़रीदा। फिर घोड़े को परखने के लिए एक घुड़सवार को दिया। घुड़सवार घोड़े पर सवार हुआ और उसे दौड़ाया। दौड़ाने में घोड़ा चोट खाकर दाग़ी हो गया। हज़रत उमर (रज़ि.) ने घोड़ा वापस करना चाहा तो बेचनेवाले ने वापस लेने से इनकार कर दिया। अब घोड़ा दाग़ी हो गया। इसपर बात बढ़ी और हज़रत शुरैह (रज़ि.) के पास दोनों फ़ैसला कराने गए। हज़रत शुरैह (रह.) ने कहा कि ख़रीदने से पहले अगर यह शर्त हो गई हो और मालिक की आज्ञा से घोड़ा दौड़ाया गया हो तो घोड़ा वापस हो सकता है, अन्यथा नहीं। इस तरह हज़रत उमर (रज़ि.) मुक़द्दमा हार गए, लेकिन हज़रत शुरैह (रह.) के इस बेलाग फ़ैसले से वे इतना ख़ुश हुए कि उसी समय उनको कूफ़ा का क़ाज़ी बना दिया।

ऊपर हमने केवल दो वाक़िआत लिखे हैं। ऐसे बहुत-से वाक़िआत हैं जो पढ़ने लायक़ हैं। अब आप ख़ुद ही समझ लीजिए कि जिस शासन में ऐसे क़ाज़ी हों उस शासन में जनता को कैसा इनसाफ़ मिल सकता है। इसी लिए मशहूर है कि हज़रत उमर (रज़ि.) के शासन में शेर और बकरी एक घाट पर पानी पीते थे। यानी कोई ज़बरदस्त कमज़ोर को दबा नहीं सकता था। इस विषय में हज़रत उमर (रज़ि.) न अपनी परवाह करते, न अपने बच्चों की और न किसी बड़े से बड़े आदमी की, चाहे वह घर का नवाब ही क्यों न हो। इस विषय में भी एक वाक़िआ सुन लीजिए।

जिबिल्ला ग़स्सानी एक ईसाई बादशाह था। वह मुसलमान होकर मदीना आया। फिर वह हज़रत उमर (रज़ि.) के साथ हज करने गया। जिबिल्ला ख़ाना-काबा का तवाफ़ (परिक्रमा) कर रहा था। साथ ही और बहुत-से लोग तवाफ़ कर रहे थे। जिबिल्ला का चोग़ा (एक प्रकार का वस्त्र) लम्बा था और वह ज़मीन से लग रहा था। एक ग़रीब आदमी का पैर उसपर पड़ गया। जिबिल्ला को झटका लगा। उसने क्रोध में उस ग़रीब आदमी को ऐसा थप्पड़ मारा कि उसकी आँख ज़ख़्मी हो गई। उसने मुक़द्दमा दायर कर दिया तो जिबिल्ला ने हज़रत उमर (रज़ि.) से शिकायत की कि एक ग़रीब आदमी एक बादशाह पर मुक़द्दमा दायर कैसे कर सकता है।

हज़रत उमर (रज़ि.) ने जवाब दिया कि इस्लामी अदालत में सबपर

मुक़द्दमा दायर हो सकता है। अब तुम्हारे लिए भलाई इसी में है कि उसे राज़ी (ख़ुश) कर लो, नहीं तो पूरा-पूरा इनसाफ़ होगा।

इसी प्रकार एक बार हज़रत उमर (रज़ि.) के एक मशहूर गवर्नर ने एक ग़ैर-मुसलिम को कोड़ा मार दिया। उसने अदालत में रपट लिएवाई तो गवर्नर साहब को उसे राज़ी करना पड़ा। इस प्रकार बहुत-से मुक़द्दमे किताबों में लिखे हैं। यही कारण था कि हज़रत उमर (रज़ि.) के शासन में जनता को बड़ा इतमीनान था। हज़रत उमर (रज़ि.) के समय में बहुत से क़ाज़ी थे। उन क़ाज़ियों में सबसे अधिक प्रसिद्ध क़ाज़ी (जज) ये थे –

हज़रत ज़ैद बिन साबित (रज़ि.)

ये बुज़ुर्ग प्यारे नबी (सल्ल.) के ऐसे प्यारे सहाबी थे कि आप (सल्ल.) पर जब क़ुरआन अवतरित होता तो आप (सल्ल.) इन्ही से लिखवाते थे। ये कई ज़बानें जानते थे और बहुत क़ाबिल और दीनदार बुज़ुर्ग थे। ये मदीना के क़ाज़ी थे।

हज़रत उबादा बिन सामित (रज़ि.)

ये वे बुज़ुर्ग सहाबी थे जिन्होंने प्यारे नबी (सल्ल.) के समय में बहुत जल्द पूरा क़ुरआन याद कर लिया था। हज़रत उमर (रज़ि.) इनकी बड़ी इज़्ज़त करते थे। ये फ़िलस्तीन के क़ाज़ी थे।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि.)

ये बहुत क़ाबिल और बुज़ुर्ग सहाबा में से थे और बहुत पहले नबी (सल्ल.) पर ईमान लाए थे तथा इस्लाम की राह में बड़ी तकलीफ़ें सही थीं। ये कूफ़ा के क़ाज़ी थे।

क़ाज़ी शुरैह (रह.)

ये सहाबी तो न थे लेकिन बहुत-ही समझदार और दीनदार व्यक्ति थे।

ये समझदारी में मशहूर थे। हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि.) के बाद कूफ़ा के क़ाज़ी नियुक्त हुए। हज़रत अली (रज़ि.) जैसे बड़े सहाबी इनको अरब का सबसे बड़ा क़ाज़ी मानते थे। हज़रत शुरैह (रह.) आधी शताब्दी यानी लगभग पचास साल क़ाज़ी रहे।

संक्षिप्त में यह कि इन ही बुज़ुर्गों की तरह हज़रत सुलैमान बिन रबीआ, जमील बिन मअ्मर, अबू मरयम, अब्दुर्रहमान बिन रबीआ, इमरान बिन हसीन भी बड़े क़ाज़ियों में से थे। हज़रत शुरैह और हज़रत सलमान का वेतन पाँच सौ दिरहम माहवार था यानी सवा सौ रुपया जो उस समय बहुत अधिक वेतन समझा जाता था।

हज़रत उमर (रज़ि.) के क़ाज़ियों के फ़ैसले किताबों में लिखे हैं। इनमें बड़ी नसीहत है और ये फ़ैसले अत्यन्त दिलचस्प और समझ बढ़ानेवाले भी हैं।

बैतुलमाल

बैतुलमाल का अर्थ है वह इमारत जिसमें सरकारी आमदनी जमा हो (यानी ख़ज़ाना)। प्यारे नबी (सल्ल.) के समय में जब कहीं से माल और असबाब आता तो आप (सल्ल.) उसे उसी समय लोगों में बाँट दिया करते थे इसलिए उस समय बैतुलमाल की ज़रूरत ही नहीं पड़ी। आपके बाद पहले ख़लीफ़ा हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने भी अपने शासन में कोई बैतुलमाल नहीं बनाया। लेकिन जब हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) ख़लीफ़ा हुए तो इस्लामी हुकूमत का विस्तार दूर-दूर तक हो गया। बड़े-बड़े देश फ़तह हुए और उन देशों से आमदनी भी होने लगी। ज़्यादा से ज़्यादा माल मदीना में आने लगा।

एक बार ऐसा हुआ कि बहरीन प्रान्त से गवर्नर हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि.) ने पाँच लाख की रक़म भेजी। इसी तरह दूसरे प्रान्तों से रक़में आने लगीं तो हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) ने सहाबा (रज़ि.) से राय ली और एक मकान को बैतुलमान बनाकर उसी में सरकारी माल रखने लगे और उसकी देखभाल करनेवाला (निगराँ) मशहूर सहाबी हज़रत अब्दुल्लाह बिन अरक़म (रज़ि.) को बनाया । हज़रत अब्दुल्लाह बिन अरक़म (रज़ि.) लिखना-पढ़ना जानते थे।

उनके ज़िम्मे यह काम भी था कि बैतुलमाल में जो रक़म और सामान आए और जो ख़र्च हो उसे एक रजिस्टर में लिखते जाएँ। हज़रत उमर (रज़ि.) ने उनकी मदद के लिए दो अन्य सहाबा नियुक्त किए। ये तीनों उन सहाबा (रज़ि.) में से थे जो अमानतदारी और दयानतदारी (ईमानदारी) में बहुत मशहूर थे। ये बैतुलमाल (ख़ज़ाना) तो मदीना में बनाया गया, इसके अतिरिक्त प्रत्येक प्रांत में भी बैतुलमाल क़ायम किए गए प्रत्येक प्रान्त की आमदनी पहले प्रान्त के बैतुलमाल में जमा होती। फिर ज़रूरतभर रखकर बाक़ी मदीना में भेजी जाती। हज़रत उमर (रज़ि.) ने हर जगह ख़ज़ाने की हिफ़ाज़त के लिए सिपाही भी नियुक्त किए। इस बैतुलमाल में महसूल (राजस्व या लगान) के अतिरिक्त ज़कात की रक़म भी जमा होती थी।

बैतुलमाल में आई हुई रक़म को हज़रत उमर (रज़ि.) एहतियात से ख़र्च करते थे। एक पैसा भी ग़लत ढंग से ख़र्च नहीं करते थे। ऐसे काम पर ख़र्च करते जिससे इस्लामी हुकूमत और जनता को फ़ायदा होता। ये तो सब लोग जानते ही हैं कि अरब का देश रेगिस्तान है। इस रेगिस्तान में हज़रत उमर (रज़ि.) ने बहुत-सी नहरें निकलवाईं। इन नहरों से लोगों को पानी लेने में आसानी हो गई। जगह-जगह छावनियाँ बनाई गईं। इन छावनियों में फ़ौज रहती, और ये फ़ौज प्रजा की हिफ़ाज़त करती। इन छावनियों से कई फ़ायदे हुए। लूटमार करनेवालों को डर पैदा हुआ और उन्होंने लूटमार छोड़ दी। अब व्यापारी क़ाफ़िले बेखटके आते-जाते। इस तरह व्यापार में उन्नति हुई। छावनियों से दूसरा फ़ायदा यह हुआ कि अगर दुश्मन इस्लामी हुकूमत के अन्दर कहीं हमला करता तो इन छावनियों से तुरन्त इतने सिपाही सामना करने के लिए भेज दिए जाते जो दुश्मन को रोकते। इसके बाद और मुजाहिदीन (अल्लाह की राह में लड़नेवाले) भेजे जाते। इन छावनियों के डर से दुश्मनों को इस्लामी हुकूमत में घुसने का साहस न होता।

हज़रत उमर (रज़ि.) की ख़िलाफ़त से पहले बाहर से लोग मेहमान के तौर पर आते थे। उनके ठहरने के लिए कोई ख़ास मकान न था। ये मेहमान या तो मसजिद में रुकते थे या फिर सहाबा दो-दो, चार-चार, छः-छः मेहमानों को अपने घर ले जाते। हज़रत उमर (रज़ि.) ने अपने ख़िलाफ़त-काल में सरकारी मेहमानख़ाने बनवाए — मदीना में भी और दूसरे राज्यों में भी। अब जो मेहमान

आते सरकारी मेहमानख़ानों में ठहराए जाते और मेहमानख़ानों के इन्तिज़ाम करनेवाले वे बुज़ुर्ग सहाबा बनाए गए जो मेहमानों की ख़ातिरदारी में मशहूर थे। इस तरह के और बहुत-से काम हज़रत उमर (रज़ि.) ने किए। अगर आप किताबें पढ़ेंगे तो आप अच्छी तरह समझ लेंगे कि हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) ने ख़लीफ़ा होकर कैसे बड़े-बड़े काम किए। हम तो उनकी वे बातें बताना चाहते हैं जिनमें आपकी दिलचस्पी की बातें ही हैं। सुनिए एक बड़ी नसीहत और दिलचस्पी की बात –

एक बार हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) ने कुछ मुसलमानों को बादशाह मुक़ौक़िस (Muqauqis) के पास भेजा। मुक़ौक़िस हज़रत उमर (रज़ि.) और दूसरे मुसलमानों से मेलजोल रखता था। यह बात सबको मालूम थी। अब देखिए, मुसलमान मिलने के लिए चले तो हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) की बीवी ने कुछ इत्र तोहफ़े के तौर पर मुक़ौक़िस की बेगम के लिए भेजा। वहाँ इत्र बहुत पसन्द किया गया। बेगम के दिल पर इस बरताव का बड़ा अच्छा असर हुआ। उसने शुक्रिया अदा किया। मुहब्बत भरा ख़त लिखा और साथ ही बहुत ही क़ीमती तोहफ़े (मोती) भेजे। मिस्र की मलिका के तोहफ़े मदीना में आए तो हज़रत उमर (रज़ि.) को हाल मालूम हुआ। आपने यह किया कि सभी तोहफ़े बैतुलमाल में जमा करवा दिए और उनमें से इतने अपनी बीवी के पास भिजवा दिए जितने इत्र के बदले मुनासिब (उचित) समझे। बीवी ने शिकायत की कि ये तोहफ़े मेरे नाम हैं, इसलिए मुझे मिलने चाहिएँ। जवाब दिया, "लेकिन इनके लानेवाले सरकारी लोग थे और यह कि ये तोहफ़े तुमको इसलिए मिले कि तुम ख़लीफ़ा की बीवी हो, और ख़लीफ़ा जिस तरह तुम्हारा है उसी तरह सभी मुसलमानों का है।" बीवी यह सुनकर चुप हो गईं। ये बीवी थीं "उम्मे कुलसूम", हज़रत अली (रज़ि.) की बेटी। हज़रत अली (रज़ि.) ने यह सुना तो मुस्कराए और हज़रत उमर (रज़ि.) के फ़ैसले से ख़ुश हुए।

यह वाक़िआ हमने आपको इसलिए बताया कि आप जान लें कि हज़रत उमर (रज़ि.) बैतुलमाल के मामले में कैसी एहतियात बरतते थे। इस तरह के बहुत-से वाक़िआत हैं।

हज़रत उमर (रज़ि.) के समय में ऐसे बहुत-से लोग मौजूद थे जिन्होंने इस्लाम के लिए अपनी जानें लड़ाई थीं और अब भी हर समय इस्लाम पर क़ुरबान होने के लिए तैयार रहते थे। इन लोगों के लिए हज़रत उमर (रज़ि.) ने बैतुलमाल से वज़ीफ़े निश्चित किए। जब आप हर एक का वज़ीफ़ा निश्चित करने लगे तो सहाबा (रज़ि.) से राय ली कि पहले किसके नाम से वज़ीफ़ा शुरू होना चाहिए। कुछ सहाबा (रज़ि.) ने राय दी की आप मुसलमानों के ख़लीफ़ा हैं, सबसे पहले आपका नाम लिखा जाना चाहिए। लेकिन हज़रत उमर (रज़ि.) ने कहा – "नहीं, मैं उन लोगों से शुरू करूँगा जो प्यारे नबी (सल्ल.) से सबसे अधिक क़रीब रहे।" यह बात सुनकर लोग इसलिए बहुत ख़ुश हुए कि हज़रत उमर (रज़ि.) को नबी (सल्ल.) से किस दर्जा मुहब्बत है।

हज़रत उमर (रज़ि.) ने नबी (सल्ल.) ही के रिश्ते से वज़ीफ़ा देना शुरू किया। नबी के रिश्ते से सबसे पहले हक़ उम्महातुल मोमिनीन[1] को पहुँचता था। इसलिए रजिस्टर में सबसे पहले उन ही का नाम लिखा गया और उनके नाम के सामने बारह-बारह हज़ार दिरहम लिखे गए। यह रक़म सारे वज़ीफ़ों में सबसे अधिक थी। उम्महातुल मोमिनीन के बाद प्यारे नबी (सल्ल.) के ख़ानदान के दूसरे बुज़ुर्गों को वज़ीफ़े दिए गए। इस तरह ख़ुद हज़रत उमर (रज़ि.) के ख़ानदान का नाम पाँच ख़ानदान के बाद आया, लेकिन हज़रत उमर (रज़ि.) ख़ुश थे कि नबी (सल्ल.) के घरानेवालों को सबसे पहले वज़ीफ़ा दिया गया।

इस विषय में एक मज़ेदार और नसीहतवाली बात सुनें। यह तो आपको मालूम ही होगा कि नबी (सल्ल.) हज़रत ज़ैद बिन हारिसा (रज़ि.) को बेटे की तरह मानते थे। उनसे बड़ी मुहब्बत करते थे। उन्हें बेटा भी बना लिया था लेकिन जब अल्लाह का हुक्म आया कि पराए व्यक्ति का बेटा असली बेटे की तरह नहीं हो सकता तो फिर वे मुँहबोले बेटे तो नहीं रहे थे, लेकिन नबी (सल्ल.) को उनसे मुहब्बत उसी तरह रही। हज़रत ज़ैद (रज़ि.) के बेटे हज़रत उसामा (रज़ि.) को भी नबी (सल्ल.) बहुत चाहते थे। उन्हीं हज़रत उसामा (रज़ि.) का वज़ीफ़ा हज़रत उमर (रज़ि.) ने अपने बेटे अब्दुल्लाह (रज़ि.) से अधिक तय किया।

---

1. उम्महातुल मोमिनीन यानी मुसलमानों की माएँ। यह लक़ब अल्लाह तआला ने नबी (सल्ल.) की बीवियों को दिया था। नबी (सल्ल.) की बीवियाँ हम मुसलमानों की माएँ ही हैं।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन उगर (रज़ि.) वे सहाबी थे कि उनकी नेकियों की तारीफ़ प्यारे नबी (सल्ल.) स्वयं किया करते थे। उन्होंने शिकायत की कि उसामा (रज़ि.) का वज़ीफ़ा मुझसे अधिक क्यों रखा गया, तो जवाब दिया, "नबी (सल्ल.) उसामा (रज़ि.) को तुझसे और उसामा के बाप को तेरे बाप से (यानी मुझसे) ज़्यादा चाहते थे ।"

देखा आपने नबी (सल्ल.) की मुहब्बत हज़रत उमर (रज़ि.) के दिल में कितनी अधिक थी। नबी (सल्ल.) की मुहब्बत के आगे वे किसी की मुहब्बत की परवाह नहीं करते थे। जब इस प्रकार सारे वज़ीफ़े तय हो चुके तो फिर दूसरों के नाम लिए गए। इनमें सबसे पहले उन लोगों के नाम थे जो नबी (सल्ल.) के साथ बद्र के मैदान में इस्लाम-दुश्मनों से लड़े थे।

हज़रत उमर फ़ारूक (रज़ि.) ने बैतुलमाल की रक़म ऐसे बच्चों को देना शुरू की थी जिनका दूध माएँ छूड़ा चुकी हों। वज़ीफ़े के लालच में माएँ पूरे दो वर्ष भी बच्चों को दूध न पिलातीं और उससे पहले दूध छुड़ा देने की कोशिश करतीं जिससे बच्चों का वज़ीफ़ा हासिल कर लें। एक बार हज़रत उमर (रज़ि.) ने एक ऐसी ही औरत को देखा। उसका बच्चा रो रहा था और वह उसे दूध नहीं पिला रही थी। आपने उसे डाँटा कि बच्चे को दूध क्यों नहीं पिलाती? उसने जवाब दिया, "भाई! तुम जानते नहीं, हमारे ख़लीफ़ा ने एलान किया है कि जिन बच्चों का दूध छूट चुका हो उन्हें वज़ीफ़ा दिया जाए। इसी लिए मैं बच्चे की आदत छुड़ा रही हूँ।"

वह औरत हज़रत उमर (रज़ि.) को पहचानती नहीं थी, लेकिन ख़लीफ़ा पर इस बात का बड़ा असर हुआ। आपने दिल में कहा कि ऐ उमर! न जाने कितने बच्चे इसी तरह रोते होंगे और माओं के दूध को तरस रहे होंगे। यह सोचकर जल्दी-जल्दी वापस मदीना आए और हुक्म दिया कि जिस दिन बच्चे पैदा हों उसी दिन से वज़ीफ़ा दिया जाए।

दीन फैलाना

हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) ख़लीफ़ा हुए तो उन्होंने ख़िलाफ़त का काम बड़े अच्छे ढंग से किया। उन्होंने बड़े-बड़े काम किए। लेकिन सबसे बड़ा

काम जो उन्होंने किया वह यह है कि अल्लाह के दीन (धर्म) को ख़ूब फ़ैलाया। नए-नए देश फ़त्ह हुए और वह इस्लामी हुकूमत में शामिल किए गए। साथ ही ऐसा इन्तिज़ाम किया कि बहुत-से लोग ख़ुशी-ख़ुशी मुसलमान हो गए। ज़बरदस्ती किसी को मुसलमान बनाना हज़रत उमर (रज़ि.) नापसन्द करते थे। हुक्म था कि ग़ैरमुस्लिमों को इस्लाम की ख़ूबियाँ समझाई जाएँ। मुसलमान इस्लाम का सच्चा नमूना पेश करें यानी अल्लाह के हुक्मों पर इस तरह चलें जैसे नबी (सल्ल.) ने बताया, समझाया और ख़ुद नमूना बनकर दिखाया है। हमेशा अच्छे काम करें, नमाज़ दिल लगाकर पढ़ें, सच बोलें, वादा पूरा करें, किसी को धोखा न दें, दुश्मनों से लड़ना पड़े तो उनके बच्चों, बूढ़ों और उनकी औरतों को न सताएँ। हज़रत सअ्द बिन वक़्क़ास (रज़ि.) को ईरान की फ़ौजों से लड़ने भेजा तो समझा दिया कि लड़ने से पहले दुश्मन को इस्लाम की ख़ूबियाँ समझाएँ। इस्लामी सेना का सरदार ऐसे व्यक्ति को बनाते जो दीन की बातें अच्छी तरह जानता होता। फिर जब कोई देश फ़त्ह होता तो वहाँ के रहनेवालों के साथ ऐसा अच्छा व्यवहार करते कि जो लोग दुश्मन होते वे दोस्त बन जाते। फिर वे इस्लाम को समझते तो मुसलमान हो जाते। इसकी बहुत-सी मिसालें हज़रत उमर (रज़ि.) के समय में मिलती हैं। कुछ वाक़िआत नीचे लिखे जाते हैं –

हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) ने ईरान फ़त्ह करने के लिए हज़रत सअ्द बिन वक़्क़ास (रज़ि.) को भेजा तो ईरानियों से बहुत-सी लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं। इन लड़ाइयों में एक ईरानी सरदार हुरमुज़ान ने मुसलमानों को बहुत नुक़सान पहुँचाया था। उसने बार-बार मुसलमानों को धोखा देकर बहुत-से मुसलमानों को शहीद कर दिया। अन्त में एक कठिन युद्ध के बाद वह पकड़ा गया। उसे क़ैद करके हज़रत उमर (रज़ि.) के पास भेजा गया। हज़रत उमर (रज़ि.) उसकी दुष्टताओं के बारे में सुन चुके थे। दिल में सोच लिया था कि हुरमुज़ान मदीने में आएगा तो उसे क़त्ल करने का हुक्म दे दिया जाएगा। वह आया, हज़रत उमर (रज़ि.) ने उसे क़त्ल करने का हुक्म दे दिया। हुरमुज़ान बड़ा बुद्धिमान आदमी था। वह जानता था कि जब मुसलमान किसी से वादा करते हैं तो उसे ज़रूर पूरा करते हैं और वादे का पूरा करना उनके मज़हब में वाजिब है, तो बस उसने अपने बचने का उपाय सोच लिया। अपने क़त्ल का हुक्म सुना तो बोला – ''मैं प्यासा

हूँ मुझे पानी पिला दीजिए।" हज़रत उमर (रज़ि.) ने पानी मँगा दिया। उसने पानी का प्याला हाथ में लिया और कहा – "मैं चाहता हूँ कि जब तक यह पानी न पी लूँ आप मुझे क़त्ल न होने दें।" हज़रत उमर (रज़ि.) ने कहा, "हाँ यह पानी तुम पी लो, इसके पीने से पहले तुमको क़त्ल नहीं किया जाएगा।" यह सुनते ही हुरमुज़ान ने वह पानी फेंक दिया और कहा कि अब आप मुझे क़त्ल नहीं कर सकते। हज़रत उमर (रज़ि.) ने कहा, "क्यों नहीं क़त्ल कर सकते।" उसने जवाब दिया कि जिस पानी के पीने का वादा था वह तो ज़मीन के अन्दर जा चुका और आपने वादा किया है कि उस पानी के पीने से पहले क़त्ल न करेंगे। आप यह पानी ज़मीन से निकाल कर मुझे पिला दीजिए तो क़त्ल कीजिए।

यह जवाब सुनकर हज़रत उमर (रज़ि.) सोच में पड़ गए। उन्होंने हुरमुज़ान को डाँटा कि तुने धोखा दिया, लेकिन दूसरे सहाबा (रज़ि.) ने कहा कि सचमुच आप यही वादा कर चुके हैं और वादा पूरा करना वाजिब है। आप इस्लामी क़ानून के मुताबिक़ इसे क़त्ल नहीं कर सकते। हज़रत उमर (रज़ि.) हुरमुज़ान की इस चतुराई पर मुस्करा दिए और हुक्म दिया कि इसे छोड़ दो।

हुरमुज़ान छोड़ दिया गया और सरकारी मेहमान बना लिया गया। छूटकर हुरमुज़ान ने ग़ुस्ल (स्नान) किया। उसके बाद आकर कहा कि मैं अब अपनी ख़ुशी से मुसलमान होता हूँ क्योंकि जो मज़हब (धर्म) ऐसे अच्छे इनसान बनाता है, मैं उस मज़हब के सच होने में कोई शक नहीं समझता । हुरमुज़ान ने कलिमा शहादत पढ़ लिया –

> **"अश्हदु अल्ला इला-ह इल्लल्लाहु व अश्हदु अन-न मुहम्मदन अब्दुहू व रसूलुहू।"**
>
> "(मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई इबादत के लायक़ नहीं और मुहम्मद (सल्ल.) अल्लाह के बन्दे और उसके रसूल हैं।)"

हुरमुज़ान के मुसलमान होने से हज़रत उमर (रज़ि.) बहुत ख़ुश हुए। उसको अपने पास ठहरा लिया और जब कोई ऐसी बात सामने आती जिसमें लोगों से राय लेनी होती तो हुरमुज़ान से भी राय लेते।

ईरान की लड़ाइयों में क़ादसिया की लड़ाई बहुत मशहूर है। ईरानियों की सेना का अफ़सर रुस्तम था और इस्लामी सेना के सरदार हज़रत सअ्द बिन वक़्क़ास (रज़ि.) थे। सअ्द बिन वक़्क़ास (रज़ि.) ने हज़रत उमर (रज़ि.) के आदेशानुसार हज़रत मुग़ीरा (रज़ि.) को रुस्तम के पास भेजा । रुस्तम ने सुना कि मुग़ीरा (रज़ि.) मिलने आ रहे हैं तो उसने दरबार सजाने का हुक्म दिया। मख़मल के गद्दे बिछाए गए, सोने-चाँदी की कुर्सियाँ, मोतियों से सजा हुआ तख़्त और तरह-तरह के सामान से दरबार सजाया गया। दरबार के सारे लोग सोने के कंगन और अतलस के लिबास पहनकर ठाट से बैठे। मुग़ीरा (रज़ि.) पहुँचे तो उनको देखकर ईरानी मुस्करा दिए। हज़रत मुग़ीरा (रज़ि.) के कपड़े साधारण थे। उनके पास तलवार तो थी, लेकिन म्यान नहीं थी। तलवार पर उन्होंने कपड़ा लपेट लिया था। दूसरे हथियार भी ऐसे ही थे। हज़रत मुग़ीरा (रज़ि.) उनके मुस्कराने का मतलब समझ गए। कुछ न बोले, सीधे बढ़ते हुए रुस्तम के तख़्त के पास पहुँचे। उसने सोने की कुर्सी पेश की। हज़रत मुग़ीरा (रज़ि.) ने सोने की कुर्सी पर बैठने से इनकार कर दिया। कहा कि हमारे रसूल (सल्ल.) ने मुसलमान मर्दों के लिए सोना इस्तेमाल करना हराम क़रार दिया है।

यह सुनकर रुस्तम ने रेशम और मख़मल के गद्दे पर बैठने को कहा तो भी वही जवाब मिला। अब रुस्तम ने कहा कि – "आप हमारे मेहमान हैं। आप बताएँ कि हम आपको कहाँ बैठाएँ?" हज़रत मुग़ीरा (रज़ि.) ने जवाब दिया कि हमारे रसूल (सल्ल.) ने यह भी बताया है कि इनसान होने के नाते सभी इनसान बराबर हैं। इनसान के लिए यह ठीक नहीं है कि वह लोगों के बीच इस प्रकार बैठे जैसे वह लोगों का ख़ुदा है। हमारे सरदार हममें इस तरह बैठते हैं कि लोग फ़र्क़ नहीं कर सकते।

हज़रत मुग़ीरा (रज़ि.) की यह बात सुनकर रुस्तम बहुत लज्जित हुआ। बात यह थी कि उसका तख़्त सभी लोगों से ऊँचाई पर बिछा था और वह उसपर इस तरह बैठा था जैसे ख़ुदा ही हो। लोग जब उसके तख़्त के पास जाते तो सज्दा करते। हज़रत मुग़ीरा (रज़ि.) ने सजदा करने से भी इनकार कर दिया था।

हज़रत मुग़ीरा (रज़ि.) की बातों से रुस्तम तो लज्जित था ही, उसके दरबार में जो अच्छे दिल के लोग थे उन्होंने भी मुग़ीरा (रज़ि.) की तारीफ़ की।

रुस्तम ने हाथ पकड़कर अपने पास बिठा लिया, फिर कहा कि अभी कल की बात है कि तुम लोग हमारी प्रजा थे, मुरदार खाते थे, आज तुम हमसे लड़ने आए हो, तुम्हारे पास हथियार भी ठीक से नहीं हैं। हज़रत मुग़ीरा (रज़ि.) ने जवाब दिया –

> "यह सच है कि हम गुमराह थे, मुरदार खाते थे, आपस में लड़ते-मरते थे, अपनी लड़कियों को ज़िन्दा दफ़्न कर दिया करते थे, लेकिन अल्लाह ने हमारे अन्दर एक रसूल (सल्ल.) भेजा। पहले तो हमने उसका कहना नहीं माना। लेकिन फिर उसकी बातें दिल में असर करने लगीं। हमने अल्लाह के दीन को समझा और मुसलमान हो गए। हमने सारी बुराइयाँ छोड़ दीं और अब नबी (सल्ल.) के दूसरे ख़लीफ़ा के हुक्म से यहाँ आए हैं और आपसे कहते हैं कि आप लोग भी इस सच्चे दीन इस्लाम को क़बूल कर लें और उन बातों को छोड़ दें जो इनसान नहीं रहने देतीं।"

हज़रत मुग़ीरा (रज़ि.) ने इसी प्रकार की और बातें कहीं। रुस्तम ने कहा कि तुम बहुत अच्छा भाषण जानते हो लेकिन यह कैसे हो सकता है कि हम तुम्हारा कहना मान लें जबकि तुम्हारे पास तलवार तो है, लेकिन म्यान नहीं है। रुस्तम से यह सुना तो हज़रत मुग़ीरा (रज़ि.) ने तलवार के ऊपर का कपड़ा अलग किया और बोले, "तुम म्यान देखना चाहते हो, जबकि असल चीज़ तलवार है।" यह कहकर तलवार को हाथ में लेकर ऊँचा किया तो ईरानियों के सामने बिजली-सी चमक गई। थोड़ी देर इसी तरह की बातें होती रहीं। आख़िर में रुस्तम ने हज़रत मुग़ीरा (रज़ि.) की बातें मानने से इनकार कर दिया।

इस तरह जब इस्लामी सेना का दूसरी सेनाओं से सामना हुआ तो पहले मुसलमान दुश्मन सेना के सरदार से जाकर मिले और इस्लाम की ख़ूबियाँ बताईं। कभी-कभी ऐसा भी होता कि दुश्मन की ओर से लोग आते।

एक बार शाम (सीरिया) देश में इस्लाम सेना से ईसाइयों की लड़ाइयाँ हो रही थीं। इस्लामी सेना के अधिकारी हज़रत अबू उबैदा (रज़ि.) थे। ईसाई

सरदार ने अपना एक अत्यन्त क़ाबिल अधिकारी उनके पास भेजा कि वे उनसे सुलह की बात करें। जार्ज जब इस्लामी सेना में पहुँचा, उस समय मग़रिब का समय हो चुका था। अज़ान के बाद मुसलमानों ने नमाज़ शुरू कर दी। जार्ज इस्लामी इबादत को ध्यान से देखता रहा। फिर उसने मुसलमानों से पूछा, "तुम्हारा सरदार कौन है?" लोगों ने हज़रत अबू उबैदा (रज़ि.) की तरफ़ इशारा किया। उसने हज़रत अबू उबैदा (रज़ि.) को साधारण लिबास पहने और ज़मीन पर बैठे देखा तो आश्चर्य में पड़ गया। उसने इस्लाम के विषय में कुछ बातें पूछीं। हज़रत अबू उबैदा (रज़ि.) ने उसे अच्छी तरह समझाया, वह मुसलमान हो गया।

उसने मुसलमान होने के बाद कहा कि अब मैं वापस नहीं जाऊँगा, यहीं मुसलमानों के साथ रहूँगा। लेकिन हज़रत अबू उबैदा (रज़ि.) ने कहा, "तुम ईसाइयों की तरफ़ से भेजे गए हो। तुम्हारा यहाँ रुकना ठीक नहीं। कल हम अपना आदमी ईसाइयों के सरदार के पास भेजेंगे। तुम उसके साथ चले आना।

शाम (सीरिया) ही की लड़ाइयों में एक लड़ाई का वाक़िआ यूँ है कि मुसलमानों ने ईसाइयों का मशहूर शहर हिम्स फ़त्ह कर लिया। हिम्स में ईसाई रहते थे। अब जो टैक्स हिम्स से ईसाई बादशाह को जाता था वह मुसलमानों ने वुसूल किया। लेकिन कुछ ही दिनों में ईसाई इतनी बड़ी सेना लेकर आए कि हज़रत अबू उबैदा (रज़ि.) ने यह उचित समझा कि उस शहर को छोड़ दें और लड़ने के लिए दूसरी जगह जाकर ठहरें। तो जब हिम्स से वापस हुए तो जितना रुपया शहर से वुसूल किया था वह सब वापस कर दिया और कहला दिया कि यह रुपया हमने तुमसे इसलिए लिया था कि शहर और शहरवालों के लिए ही ख़र्च होगा। अब चूँकि हम यहाँ से जाते हैं तो यह रुपया क्यों ले जाएँ।

यह सुनकर हिम्स के ईसाई मुसलमानों को दुआएँ देने लगे और कहने लगे कि ख़ुदा तुमको हमपर बनाए। फिर जब जहाँ-जहाँ मुसलमानों की जीत हुई और वहाँ इस्लामी हुकूमत के अनुसार इन्तिज़ाम हुआ तो लोगों ने देखा कि इस्लाम कैसा बरकतवाला मज़हब है। यह देखकर सारे के सारे देश मुसलमान हो गए। इस विषय में बड़ी-बड़ी किताबों में बहुत-से वाक़िआत मिलते हैं।

जिस ज़गह के लोग मुसलमान हो जाते, वहाँ हज़रत उमर (रज़ि.)

क़ुरआन के दर्स (पाठ) की व्यवस्था कराते थे। अच्छे से अच्छे क़ारी (क़ुरआन पढ़नेवाले) और क़ुरआन समझानेवाले भेजे जाते। सहाबा (रज़ि.) में पाँच बुज़ुर्ग ऐसे थे जो सबसे अच्छे क़ारी माने जाते थे। ये पाँचों बुज़ुर्ग नबी (सल्ल.) के शागिर्द (शिष्य) थे और सब हाफ़िज़ थे। इनमें हज़रत अबू अय्यूब अनसारी बहुत बूढ़े हो चुके थे और हज़रत उबैय बिन काब (रज़ि.) बीमार थे। इन दोनों को तो बाहर जाने का मौक़ा न मिला, बाक़ी तीन बुज़ुर्ग हज़रत मआज़ बिन जबल (रज़ि.), उबादा बिन सामित (रज़ि.) और अबू दरदा (रज़ि.) को शाम की तरफ़ भेज दिया। इन बुज़ुर्गों ने वहाँ क़ुरआन ख़ूब फैलाया। हज़ारों मुसलमानों ने उनसे क़ुरआन सीखा। एक बार गिना गया तो हज़रत अबू दरदा के शागिर्द एक हज़ार छ: सौ निकले।

हज़रत उमर (रज़ि.) ने जिस तरह क़ुरआन फैलाया, उसी तरह रोज़ा, नमाज़ आदि के क़ायदे बताने के लिए भी लोग नियुक्त किए। लेन-देन, शादी-ब्याह इत्यादि के विषय में बतानेवाले नियुक्त किए। इस प्रकार जो व्यक्ति मुसलमान हो जाता वह इस्तेमाल की सारी बातें मालूम कर लेता था। हुक्म था कि दीन की जो बातें सुनो उनपर अमल करो।

कुछ मुख्य बातें

प्यारे नबी (सल्ल.) जब हिजरत करके मदीना चले गए तो मक्का के इस्लाम-दुश्मनों ने एक बहुत बड़ी सेना के साथ मदीना पर चढ़ाई कर दी। नबी (सल्ल.) ने सुना तो प्यारे सहाबा (रज़ि.) को साथ लेकर रोकने के लिए बढ़े। बद्र के मैदान में इस्लाम-दुश्मनों से लड़ाई हुई। बद्र की लड़ाई में बहुत-से इस्लाम-दुश्मन मारे गए और बहुत-से क़ैद हुए। इन क़ैदियों के बारे में सोचा जाने लगा कि उनके साथ क्या व्यवहार करना चाहिए। नबी (सल्ल.) ने अपने प्यारे सहाबा से राय ली। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने राय दी कि ये सब अपने ही भाई-बिरादर हैं, इनको छोड़ दिया जाए और इसके बदले कुछ रक़म (फ़िदया) ले ली जाए। प्यारे रसूल (सल्ल.) ने हज़रत उमर (रज़ि.) से राय ली। उन्होंने कहा कि दीन के मामले में भाई-बिरादरी का ख़याल नहीं करना चाहिए। मेरी राय है कि इन सबको क़त्ल कर दिया जाए।

सबसे राय लेने के बाद रसूल (सल्ल.) ने फ़िद्या लेकर क़ैदियों को छोड़ दिया – क़ैदियों को छोड़ने के बाद अल्लाह तआला की तरफ़ से जो आयतें उतरीं उनसे मालूम होता है कि हज़रत उमर (रज़ि.) की राय ही ठीक थी। (देखिए सूरा अनफ़ाल, आयत 67,68,69)

नबी (सल्ल.) ने हज़रत उमर (रज़ि.) को बुलाया और आयतें सुनाईं। फिर कहा कि क़ुरआन तो हमारे घर (यानी हमपर) नाज़िल (अवतरित) होता है। और हज़रत उमर (रज़ि.) के दिल में पहले से अल्लाह तआला डाल देता है। हज़रत उमर (रज़ि.) की यही सूझबूझ देखकर प्यारे नबी (सल्ल.) ने एक बार कहा कि जिस रास्ते से उमर जाते हैं उस रास्ते से शैतान भाग जाता है।

प्यारे रसूल (सल्ल.) ने हज़रत उमर (रज़ि.) की सूझबूझ के विषय में जो कुछ कहा वह सिर्फ़ ऊपरवाली घटना ही से साबित नहीं होता, इसकी और बहुत-सी मिसालें हैं। मिसाल के तौर पर जब मुसलमान मक्का से हिजरत कर के मदीना चले गए तो हज़रत उमर (रज़ि.) को बार-बार यह ख़याल आता था कि मुसलमान औरतों को परदा करना चाहिए। उन्होंने नबी (सल्ल.) से कई बार कहा भी। आख़िर में अल्लाह तआला ने परदे का हुक्म उतारा। और सुनिए – मदीना में एक मुनाफ़िक़ था। उसका नाम अब्दुल्लाह बिन उबैय था। अब्दुल्लाह बिन उबैय मुनाफ़िक़ ही नहीं, मुनाफ़िक़ों का सरदार था। वह अपनी ज़बान से तो मुसलमान होने का दावा करता था यानी कहता था कि मैं मुसलमान हूँ लेकिन दिल से इस्लाम का सबसे बड़ा दुश्मन था। यह बात सभी जानते थे। लेकिन उसके एक समझदार बेटे, जिनका नाम भी हज़रत अब्दुल्लाह था, प्यारे नबी (सल्ल.) के सच्चे साथियों में से थे। अब्दुल्ला बिना उबैय मरा तो बेटे ने प्यारे रसूल (सल्ल.) से उसकी नमाज़े जनाज़ा पढ़ने के लिए कहा। प्यारे नबी (सल्ल.) रहमदिल और मुरव्वतवाले इनसान थे। आप (सल्ल.) ने उसकी नमाज़े जनाज़ा पढ़ा दी। हज़रत उमर (रज़ि.) ने आश्चर्य के साथ कहा – "ऐ अल्लाह के रसूल! आपने उसकी नमाज़े जनाज़ा पढ़ाई?" प्यारे नबी (सल्ल.) चुप रहे। फिर अल्लाह तआला ने अपने नबी (सल्ल.) के पास हुक्म भेजा कि मुनाफ़िक़ की नमाज़े जनाज़ा नहीं पढ़ाना चाहिए थी। नबी (सल्ल.) ने यह हुक्म

भी हज़रत उमर (रज़ि.) को सुनाया।

इसी तरह की और भी मिसालें हैं। जब प्यारे नबी (सल्ल.) मदीना में आए तो यह सोचा जाने लगा कि नमाज़ों के समय मुसलमानों को कैसे इकट्ठा किया जाया करे। किसी ने कहा कि घण्टी बजाई जाया करे। किसी ने कहा कि नाक़ूस (शंख) फूँका जाया करे। मतलब यह कि जो जिसकी समझ में आता राय देता। हज़रत उममर (रज़ि.) ने अज़ान देने की राय दी। उनके राय देने के बाद एक और प्यारे सहाबी आ गए उन्होंने आकर कहा कि हज़रत उमर (रज़ि.) ठीक कहते हैं। मैंने ख़ाब में अज़ान सुनी है। उसके बाद उन्होंने अज़ान के बोल सुनाए। प्यारे नबी (सल्ल.) ने हज़रत बिलाल (रज़ि.) को अज़ान देने का हुक्म दिया।

इस विषय में किताबों के अन्दर बहुत-सी बातें लिखी हैं, लेकिन हम उनको छोड़ते हैं। केवल एक दिलचस्प बात और लिखते हैं। वह मज़ेदार बात यह है कि हज़रत उमर (रज़ि.) के ज़माने में ईरानियों से एक बहुत बड़ी लड़ाई हुई। उस लड़ाई में इस्लामी सेना के सेनापति प्यारे नबी (सल्ल.) के मामूँ और मशहूर सहाबी हज़रत सअ्द बिन अबी वक़्क़ास (रज़ि.) थे। ईरानियों की फ़ौज बहुत ज़्यादा थी। मुसलमानों की फ़ौज बहुत कम थी। हज़रत सअ्द बिन अबी वक़्क़ास (रज़ि.) ने हज़रत उमर (रज़ि.) को लिखा कि मदद के लिए फ़ौज भेजिए। उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) ने चार मुजाहिद भेजे और लिख दिया कि मैंने चार हज़ार की सेना भेजी है, इनके अलावा बाद में और सेना भेजूँगा।

ये चारों मुजाहिद ईरान पहुँचे। उन्होंने ख़त सअद बिन अबी वक़्क़ास (रज़ि.) को दिया। उन्होंने ख़त पढ़ा तो पूछा – "चार हज़ार की सेना यही चार आदमी हैं?" उन चारों मुजाहिदों में मअदी करब एक मुजाहिद थे। उनको सेनापति की बात लग गई। वे उसी समय ईरानियों की सेना की तरफ़ चले। एक तरफ़ एक हज़ार की सेना डेरा डाले पड़ी थी। उन्होंने पूछा – " यह सेना कैसी है?" लोगों ने बताया कि यह हमारे सरदार रुस्तम की चुनी हुई सेना है। मअदी करब (रज़ि.) ने फिर पूछा – "और तुम्हारा सरदार कहाँ है?" बताया कि वह सामने! उन्होंने उधर देखा। वहाँ एक बेहतरीन घोड़ा बँधा देखा तो उसी ओर चल

दिए। जाकर घोड़ा खोला, लेकर चले और पुकारा, "मैं हूँ मअदी करब! तुममें है कोई जो मुझे रोक सके।" यह सुनकर पूरी एक हज़ार की सेना दौड़ पड़ी। सबने हल्ला बोल दिया। मअदी करब ने भी तलवार निकाली। लड़ते-भिड़ते अपनी सेना के पास आ गए। मुसलमानों ने देखा तो मदद के लिए आगे बढ़े। उन्हें देखकर ईरानी वापस चले गए। मअदी करब ने मुसलमानों से कहा कि तुम्हारे आने की ज़रूरत नहीं थी। मैं इनके लिए क़ाफ़ी था। इसके बाद घोड़ा सअ्द बिन अबी वक़्क़ास (रज़ि.) की सेवा में पेश किया। लोग समझ गए कि हज़रत उमर (रज़ि.) ने जो कुछ लिखा है वह सचमुच ठीक है कि चारों मुजाहिदों में हर एक हज़ार-हज़ार सिपाहियों के बराबर है।

अल्लाह तआला ने इस सूझबूझ के साथ हज़रत उमर (रज़ि.) को ज़बान और क़लम का मालिक बनाया था। यानी वे बड़ी अच्छी तक़रीर (भाषण) भी करते थे और क़लम से जो बात लिखते थे, वह बहुत अच्छे तरीक़े से लिखते थे। इस बात को सारे सहाबा (रज़ि.) मानते थे। एक बार एक सहाबा ने ख़िलाफ़त के बारे में ऐसी बात कही जिससे झगड़ा हो जाने की सम्भावना थी। हज़रत उमर (रज़ि.) ने सुना तो एलान करा दिया जुमा को इस विषय में तक़रीर करूँगा। हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि.) ने सुना तो जुमा को मेम्बर के पास जाकर बैठे और एक साहब से कहा – "आज उमर (रज़ि.) ऐसी तक़रीर करेंगे कि उसका जवाब नहीं।"

सचमुच हज़रत उमर (रज़ि.) ने वह तक़रीर इतनी ज़ोरदार की कि बात सबकी समझ में आ गई और झगड़ा पैदा होने की सम्भावना ख़त्म हो गई। बहुत दिनों तक उनकी उस तक़रीर को लोगों ने याद रखा। इसी तरह उनकी तहरीर (लिखावट) भी बड़ी ज़ोरदार होती थी।

हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) यह चाहते थे कि मुसलमान सभी मामलों में ख़ूब सोच-समझकर बात किया करें। इस बारे में जब सहाबा (रज़ि.) के पास बैठते तो कोई बात छेड़ देते। लोग आज़ादी के साथ उस बात के बारे में कहते-सुनते। कभी-कभी ऐसा होता कि हज़रत उमर (रज़ि.) क़ुरआन की किसी

आयत का अर्थ पूछ बैठते और सहाबा (रज़ि.) ग़ौर करके जवाब देते। ज़ाहिर बात है कि ऐसी महफ़िलों में कैसे-कैसे क़ाबिल लोग सम्मिलित होते होंगे। लेकिन हज़रत उमर (रज़ि.) उस महफ़िल में हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि.) को भी बिठाते थे जो अधिक उम्र के न थे, बल्कि नौजवान थे। बड़ों ने आपत्ति की कि हज़रत! आप ऐसी महफ़िलों में बच्चों को क्यों बुलाकर बिठा लेते हैं। यह "बच्चों" वाली बात लोगों ने हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि.) के बारे में कही थी। लेकिन हज़रत उमर (रज़ि.) जानते थे कि यह "बच्चा" कैसा क़ाबिल है। सच्ची बात यह थी कि हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि.) दीन की बहुत-सी बातों में हज़रत उमर (रज़ि.) के शागिर्द थे। हज़रत उमर (रज़ि.) ने इनको ज़हीन देखा तो उन महफ़िलों में बैठने की इजाज़त दे दी। फिर जब बहस छिड़ती तो उनसे भी पूछा जाता। हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि.) जवाब देने के लिए खड़े होते तो कम उम्र के कारण झिझकते। हज़रत उमर (रज़ि.) उनका हौसला बढ़ाते। वे जवाब देते तो लोगों को मालूम होता कि हज़रत उमर (रज़ि.) आदमी को बहुत अच्छी तरह पहचानते हैं। सच बात यह है कि दो अब्दुल्लाह (अब्दुल्लाह बिन अब्बास और अब्दुल्लाह बिन उमर) क़ुरआन और हदीस के ऐसे आलिम (विद्वान) गुज़रे हैं कि उनके समय में उनके बराबर कोई दूसरा न था। इनमें से एक अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि.) हज़रत उमर (रज़ि.) के शागिर्द (शिष्य) और दूसरे अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि.) उनके प्यारे बेटे थे। दोनों को बहुत अच्छी तरबियत दी। तीसरे एक और सहाबी थे – हज़रत नाफ़े (रज़ि.)। वे भी बहुत मशहूर हैं। वे हज़रत उमर (रज़ि.) के ग़ुलाम थे। ये तीनों बहुत ही नामी आलिम (विद्वान) गुज़रे हैं।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि.) के बारे में यह पढ़कर न समझा जाए कि दूसरे ज़हीन और होनहार बच्चों पर उनकी नज़र नहीं थी। वे दूसरे ज़हीन बच्चों को देखते तो उनमें जो ख़ूबी होती उसे उभारते।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) उनके समय में बच्चे थे। वे बड़े निडर थे। हज़रत उमर (रज़ि.) उनकी इस ख़ूबी को उभारा करते थे। एक बार वे ऐसे बच्चों की तरफ़ गए जिनमें हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) भी थे।

दूसरे बच्चे हज़रत उमर (रज़ि.) को देखकर एक तरफ़ हो गए और खेल बन्द कर दिया, लेकिन अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) न हटे। हज़रत उमर (रज़ि.) उनके पास गए, डाँटकर (दिखाने के लिए डाँटा) बोले, "बच्चे तू रास्ते से क्यों न हटा?" उन्होंने भी निडर होकर जवाब दिया – "रास्ता इतना तंग न था कि आप निकल नहीं सकते।" अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर की यह बातें सुनते तो कहा करते– "जैसा दूध वैसा पूत।"[1]

यही अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) एक बार सफ़र में आपके साथ थे। ये कमसिन थे और अपने साथ के दूसरे बड़े लड़कों के साथ चुहलें (दिल्लगी) करते जाते थे। रास्ते में झाड़ियाँ पड़तीं। उनके फूल तोड़ लाते और उन्हें उछालते हुए चलते। हज़रत उमर (रज़ि.) उनकी शोख़ी (चंचलता) देखते और सिर्फ़ इतना कहते – "देखो भाई, ऊँट भड़कने न पाएँ।"

सोचने की बात है। ये हज़रत उमर (रज़ि.) वही उमर (रज़ि.) हैं जिनके बारे में लोगों ने हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) से कहा था कि आप ऐसे व्यक्ति को ख़लीफ़ा बनाए जाते हैं जो बहुत ग़ुस्सेवाला है। उस समय हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने जवाब दिया था – "हाँ जब ख़िलाफ़त का बोझ पड़ेगा तो उमर (रज़ि.) का दिमाग़ ऐसा न रहेगा।" कैसी सच्ची बात निकली मुहँ से! हुआ भी ऐसा ही। ख़लीफ़ा होने के बाद दिन ब दिन नर्म होते गए, यहाँ तक कि बच्चों की शरारतें और शोख़ियाँ भी सहन करते थे।

हज़रत हुसैन (रज़ि.) भी उस समय बच्चे थे। एक दिन जुमा को हज़रत उमर (रज़ि.) मेम्बर पर ख़ुतबा दे रहे थे। हुसैन (रज़ि.) उधर आ गए। उन्होंने मेम्बर पर अपने प्यारे नाना को ख़ुतबा देते देखा था। बच्चे तो थे ही आकर बोले– "आप मेरे नाना की जगह पर क्यों बैठे हैं?" हज़रत उमर (रज़ि.) मुस्करा

---

1. हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) के नवासे थे। रसूल के हवारी (वफ़ादार) हज़रत ज़ुबैर (रज़ि.) के बेटे थे। माँ का नाम हज़रत असमा था। असमा हज़रत सफ़िया (रज़ि.) की बहू थीं जो हज़रत हमज़ा (रज़ि.) की बहन और बहुत बहादुर औरत और नबी (सल्ल.) की फूफी थीं।

दिए। लेकिन हज़रत अली (रज़ि.) बेटे के बचपने पर घबरा गए। हज़रत उमर (रज़ि.) उनकी घबराहट जान गए और कहा – "कोई बात नहीं, बचपना है।"

इस वाक़िआ में जहाँ हुसैन (रज़ि.) के बचपन की बात ज़ाहिर होती है, वहाँ यह भी है कि हज़रत उमर (रज़ि.) प्यारे रसूल (सल्ल.) के घरवालों और रिश्तेदारों, यहाँ तक कि बच्चों तक की बहुत इज़्ज़त करते थे। ख़लीफ़ा होने के बाद दिमाग़ में ऐसी नरमी आ गई थी कि बड़ी से बड़ी बात बरदाश्त कर लेते थे। हज़रत उमर (रज़ि.) ने ख़लीफ़ा होने पर मशहूर सेनापति हज़रत ख़ालिद (रज़ि.) को इस पद से अलग कर दिया। हज़रत ख़ालिद (रज़ि.) के घराने के व्यक्ति ने भरे मजमे में डाँटकर कहा –"उमर तूने ख़ुदा की तलवार को म्यान में रख दिया।" उनके इस ग़ुस्से पर सिर्फ़ यह कहा कि "तुमको अपने भाई की वजह से ग़ुस्सा आ गया।"

इसी तरह हज़रत उमर (रज़ि.) एक बार तक़रीर कर रहे थे और कह रहे थे कि औरतों के मेहर की रक़म सरकारी तौर पर निश्चित हो जानी चाहिए। इस पर एक औरत ने डाँट दिया कि – "औरतों के जिस हक़ के बारे में अल्लाह और अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने रक़म तय नहीं की तो इसपर आप पाबन्दी (रोक) लगानेवाले कौन होते हैं?" इसपर कहा कि उमर से ज़्यादा तो यह बुढ़िया दीन जानती है।

एक बार तक़रीर करते-करते कहा, "मसलमानो! अगर मैं टेढ़ा हो जाऊँ तो तुम क्या करोगे?" एक आदमी ने तलवार निकालकर कहा, "मैं आपको इसकी नोक से सीधा कर दूँगा।" हज़रत उमर उस समय भी ग़ुस्सा पी गए। बोले – " इस क़ौम में जब तक इस नौजवान जैसे लोग बचे रहेंगे, यह क़ौम ज़िन्दा रहेगी।

हज़रत उमर (रज़ि.) कभी-कभी ऐसी बातें करते जिनसे मालूम होता है कि वे अपने घमण्ड और ग़ुस्से को दबाने का अभ्यास करते हैं। एक दिन ख़ुतबा (धर्मोपदेश) देते-देते कहने लगे, "मैं बचपन में बकरियाँ चराया करता था और अगर सुस्ती करता तो मेरा बाप मुझे पीटता था।" लोगों ने सुना तो आपस में कहने लगे – "इस बात को कहने की क्या ज़रूरत थी।" हज़रत उमर (रज़ि.) ने

सुना तो बताया कि शैतान बहकाता है कि ऐ उमर! अब तो तुम ख़लीफ़ा हो। इस समय भी शैतान ने यही कहा तो मैंने यूँ उसका गला दबा दिया।

एक बार हज़रत हुसैन (रज़ि.) के बड़े भाई हज़रत हसन (रज़ि.) हज़रत उमर (रज़ि.) के एक बेटे के साथ खेल रहे थे। खेल ही खेल में कुछ अनबन हो गई। हज़रत हसन (रज़ि.) की ज़बान से निकल गया कि "तू और तेरा बाप दोनों मेरे नाना के ग़ुलाम हैं।"

बेटे ने घर आकर बाप से शिकायत की। हज़रत उमर (रज़ि.) ने जाकर हज़रत अली (रज़ि.) से कहा। हज़रत अली (रज़ि.) ने हसन (रज़ि.) को बुलाया और कहा कि "यूँ कहा है?" वे चुप खड़े रहे तो हज़रत अली (रज़ि.) हज़रत उमर (रज़ि.) से कहने लगे – "बच्चा है, बिना समझे इसने ऐसा कह दिया।"

हज़रत उमर (रज़ि.) ने हज़रत अली (रज़ि.) और हज़रत हसन (रज़ि.) को साथ लिया और मसजिदे नबवी पहुँचे। वहाँ बहुत-से लोग जमा थे। हज़रत उमर (रज़ि.) ने हज़रत हसन (रज़ि.) से कहा – "बेटा! तुमने मुझे अपने नाना का ग़ुलाम कहा है, तो यह लिख दो।" ये शब्द लिख दिए गए। हज़रत उमर (रज़ि.) ने इस लिखावट को सीने से लगाया और कहा, "देखो! क़ियामत में मेरा मामला मेरे रब के सामने पेश हो तो यही गवाही देना।"

अब हज़रत अली (रज़ि.) समझे कि यह क़िस्सा हज़रत उमर (रज़ि.) ने क्यों छेड़ा और क्यों मुसलमानों के बीच लाए।

आप भी समझ गए होंगे कि यह क्या बात हुई। सच्ची बात यह है कि हज़रत उमर (रज़ि.) हसन (रज़ि.) के नाना यानी नबी (सल्ल.) की ग़ुलामी पर गर्व हुआ और इस्लामी अक़ीदे के मुताबिक़ जो प्यारे नबी (सल्ल.) का ग़ुलाम हो जाए, नबी (सल्ल.) ही के कहने पर चले, उससे बड़ा मुसलमान कौन हो सकता है। हज़रत उमर (रज़ि.) हज़रत हसन (रज़ि.) की इस बात से नाराज़ होने के बदले ख़ुश हुए।

एक और वाक़िआ सुनिए, इससे मालूम होता है कि हज़रत उमर (रज़ि.) उन लोगों को कितना अज़ीज़ रखते थे जिनको नबी (सल्ल.) अज़ीज़

रखते थे चाहे वे ग़ुलाम ही क्या न हों। हज़रत ज़ैद (रज़ि.) और हज़रत उसामा बिन ज़ैद (रज़ि.) के बारे में आप पढ़ चुके हैं। अब कुछ और लोगों के बारे में पढ़िए।

एक बार कुछ सहाबा (रज़ि.) हज़रत उमर (रज़ि.) के घर बैठे थे। आपने उनसे कहा कि आप लोग जो बात सबसे ज़्यादा चाहते हों, बयान करें। हज़रत उमर (रज़ि.) के कहने से एक साहब ने कहा, "मैं चाहता हूँ कि अल्लाह मुझे उहुद पहाड़ के बराबर सोना दे और मैं वह सब अल्लाह की राह में ख़ैरात (दान) कर दूँ।" किसी ने कहा, "अल्लाह तआला दीन का मुझे बड़ा आलिम बनाए जिससे मैं ख़ूब दीन फैलाऊँ।" एक और बुज़ुर्ग ने कहा, "मैं जिहाद करूँ और शहीद हो जाऊँ जिससे ख़ुदा मुझसे आख़िरत में मेरे कामों का हिसाब न ले।" इसी तरह सबने अपनी-अपनी इच्छा बतलाई। आख़िर में हज़रत उमर (रज़ि.) ने कहा, "मैं चाहता हूँ कि अल्लाह मेरे घर को सलमान फ़ारसी (रज़ि.) सुहैब रूमी (रज़ि.) और बिलाल हबशी (रज़ि.) जैसे लोगों से भर दे और मैं उनके बीच बैठूँ।"

जिन बुज़ुर्गों का नाम हज़रत उमर (रज़ि.) ने लिया वे सब प्यारे नबी (सल्ल.) के बहुत अज़ीज़ थे और सहाबा (रज़ि.) में बहुत ऊँचा मक़ाम रखते थे। सलमान फ़ारसी (रज़ि.) की इज़्ज़त नबी (सल्ल.) इतनी करते कि रातों को उनसे सलाह-मशविरा करते। सुहैब रूमी (रज़ि.) के विषय में नबी (सल्ल.) ने कहा कि यह रूम का पहला आदमी है जो मुसलमान हुआ और हज़रत बिलाल (रज़ि.) तो मुअज़्ज़िन ही थे, आपके घर का इन्तिज़ाम करनेवाले भी थे।

शहादत

हज़रत उमर फ़ारूक़ के समय में एक व्यकित था, उसका नाम फ़िरोज़ था। फ़िरोज़ पारसी धर्म का माननेवाला था और हज़रत मुग़ीरा बिन शेअबा (रज़ि.) का ग़ुलाम था। उसको मुसलमानों से बड़ी दुश्मनी थी। वह सबसे अधिक हज़रत उमर (रज़ि.) से नाराज़ था। शायद इसकी वजह यह थी कि फ़िरोज़ फ़ारस का रहनेवाला था और फ़ारस हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) के

काल में फ़तह हुआ था। यही क़ौमी तास्सुब (जातीय पक्षपात) उसके अन्दर था। वह इस घात में रहता था कि मौक़ा मिले तो हज़रत उमर (रज़ि.) को मौत के घाट उतार दे। आख़िर एक दिन उसने वही किया जो उसके दिल में था।

हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) सुबह की नमाज़ (नमाज़े फ़ज्र) पढ़ा रहे थे। जमाअत से नमाज़ हो रही थी। सभी नमाज़ी बड़ी तवज्जोह और पूरे ध्यान के साथ जमाअत में शरीक थे। अचानक फ़िरोज़ ख़ंजर लेकर आया और आते ही हज़रत उमर (रज़ि.) पर वार करने लगा। उसने छः वार किए। एक बार उसका ख़ंजर हज़रत उमर फ़रूक़ (रज़ि.) की नाफ़ (नाभि) के नीचे लगा। उसके लगते ही आपने एक मशहूर सहाबी हज़रत अब्दुर्रहमान बिन औफ़ (रज़ि.) को पकड़कर अपनी जगह खड़ा कर दिया कि वे नमाज़ पढ़ाएँ और ख़ुद गिर पड़े। हज़रत अब्दुर्रहमान ने जल्दी-जल्दी नमाज़ पूरी की।

फ़िरोज़ ने कुछ दूसरे मुसलमानों पर भी वार किए। उन्हें चोट भी आई, लेकिन फिर वह पकड़ लिया गया। जैसे ही उसे पकड़ा गया उसने वही ख़ंजर अपने आपको मार लिया और गिरकर मर गया। मुसलमान हज़रत उमर (रज़ि.) को उठाकर घर ले गए। आपने लोगों से पूछा, "मुझे किसने क़त्ल करने की कोशिश की?" बताया गया कि फ़िरोज़ ने। यह सुनकर बोले, "अल्लाह का शुक्र है कि मुझे किसी मुसलमान ने नहीं क़त्ल किया, बल्कि एक काफ़िर (अधर्मी) ने किया।"

इस बात-चीत के बाद दवा-इलाज की दौड़-भाग शुरू हुई। हकीम आया। उसने दवा दी, लेकिन दवा ने काम नहीं किया। सब आपकी ज़िन्दगी से निराश हो गए। आपसे कहने लगे कि जिस तरह हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने अपनी ज़िन्दगी में ख़लीफ़ा चुन लिया था, आप भी बता जाइए कि आपके बाद हम किसे ख़लीफ़ा बनाएँ।

हज़रत उमर (रज़ि.) को भी इसकी बड़ी फ़िक्र थी। तमाम सहाबा (रज़ि.) में वे इन सहाबा (रज़ि.) को सबसे बेहतर समझते थे –

1. हज़रत अली (रज़ि.), 2. हज़रत उसमान (रज़ि.), 3. हज़रत अब्दुर्रहमान बिन औफ़ (रज़ि.), 4. हज़रत सअ्द बिन वक़्क़ास (रज़ि.),

5. हज़रत ज़ुबैर (रज़ि.) और, 6. हज़रत तलहा (रज़ि.)।

हज़रत उमर (रज़ि.) ने मुसलमानों से कहा कि उनमें से किसी को ख़लीफ़ा बना लेना। कुछ लोगों ने कहा कि आप के बेटे अब्दुल्लाह (रज़ि.) भी तो बहुत क़ाबिल आदमी हैं। बहुत मुत्तक़ी (परहेज़गार, अल्लाह से डरनेवाले) हैं। रसूल (सल्ल.) ने उनकी तारीफ़ की है। उन्हें ख़लीफ़ा बनाया जाए।

यह सुनकर कहा कि मेरे बेटे अबदुल्लाह को ख़लीफ़ा हरगिज़ न बनाया जाए। यह बात दूसरे ख़लीफ़ा ने इसलिए कही थी कि कहीं उनके बाद उनके अपने बेटे ही को ख़िलाफ़त सौंप देने से इस्लाम में बादशाहत के तरीक़े पर ख़िलाफ़त न शुरू हो जाए। ख़लीफ़ा हज़रत उमर (रज़ि.) ने भी नसीहत की कि जो व्यक्ति मेरे बाद ख़लीफ़ा हो, उसको चाहिए वह मुस्लिम और ग़ैर-मस्लिम सबके हक़ (अधिकार) को अदा करता रहे। ख़ुदा और उसके रसूल (सल्ल.) की तरफ़ से जो ज़िम्मेदारियाँ उस पर हैं उनको पूरा करता रहे। जो ग़ैर-मुस्लिम इस्लामी हुकूमत में रहते हैं, अगर कोई उनसे लड़े तो उनके दुश्मनों से लड़ा जाए और उनको जो हक़ दिया गया है उस हक़ का पूरा-पूरा ध्यान रखे।

इस तरह की नसीहतें करके अपने बेटे अब्दुल्लाह (रज़ि.) को बुलाया और कहा कि मुझपर जो क़र्ज हो उसे मेरा मकान बेचकर अदा कर देना। फिर कहा कि जाओ हज़रत आइशा (रज़ि.) से मेरी तरफ़ से कहो कि मेरी क़ब्र नबी (सल्ल.) के पास बनाने की इजाज़त दे दें।

हज़रत उमर (रज़ि.) ने यह इजाज़त इसलिए माँगी कि नबी (सल्ल.) हज़रत आइशा (रज़ि.) के मकान में दफ़्न किए गए थे और जब हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) की मृत्यु हुई थी तो नबी (सल्ल.) के दाहिनी तरफ़ उन्हें दफ़्न किया गया था। बाईं तरफ़ जगह ख़ाली थी। यह हज़रत आइशा (रज़ि.) ने अपने लिए रखी थी। लेकिन हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि.) ने जाकर इजाज़त माँगी तो उम्मुल मोमिनीन (रज़ि.) ने इजाज़त दे दी और फिर हज़रत उमर (रज़ि.) को नबी (सल्ल.) के पास ही दफ़्न कर दिया गया। इस तरह दस साल छः महीने ख़िलाफ़त का काम करके दूसरे ख़लीफ़ा इस दुनिया से कूच कर गए। अल्लाह उनपर अपनी रहमतें नाज़िल करे। आमीन!

हज़रत उसमान ग़नी (रज़ि.)

ख़ानदान, पेशा और मिज़ाज

हज़रत उमर (रज़ि.) की शहादत के बाद मुसलमानों ने हज़रत उसमान (रज़ि.) को ख़लीफ़ा चुना। हज़रत उसमान (रज़ि.) मक्का के मशहूर ख़ानदान बनू उमैय्या के सबसे अच्छे व्यक्ति थे । हज़रत उसमान (रज़ि.) ने अपने बचपन में ही पढ़ना-लिखना सीख लिया था। उस समय बहुत कम लोग पढ़े-लिखे होते थे, इसलिए पढ़े-लिखे लोगों की बड़ी इज़्ज़त की जाती थी। पढ़े-लिखे होने से हज़रत उसमान (रज़ि.) को लोग मानते और उनकी बड़ी इज़्ज़त करते थे, फिर यह कि जब वे बड़े हुए और उन्होंने व्यापार शुरू किया तो अल्लाह ने उनके व्यापार में बड़ी बरकत दी। वे थोड़े ही दिनों में मक्का के बहुत बड़े मालदार आदमी हो गए।

हज़रत उसमान (रज़ि.) बहुत धनवान हो गए तो उनकी और अधिक इज़्ज़त होने लगी। मालदार लोगों में कुछ बुराइयाँ पैदा हो जाती हैं। मालदार आदमी बड़ा कंजूस होता है। वह दूसरों को देता नहीं, बल्कि दूसरों से लेने की फ़िक्र में रहता है। मालदार आदमी बड़ा घमण्डी भी होता है। वह अपने से कम मालदार और ग़रीबों को अपने से छोटा आदमी समझने लगता है और उन्हें अपने कहने पर चलाने की कोशिश करता है। ऐसी ही कुछ और बुराइयाँ मालदार आदमी में होती हैं, लेकिन हज़रत उसमान (रज़ि.) में ये बुराइयाँ बिलकुल नहीं थीं। वे बड़े नर्मदिल के थे। ग़रीबों के दुख को अच्छी तरह समझते थे और अपने पैसे से दूसरों की मदद किया करते थे। उन्हें घमण्ड भी बिलकुल न था। वे सबकी इज़्ज़त करते थे । उस ज़माने में लोग शराब पीना बुरा नहीं समझते थे, लेकिन हज़रत उसमान (रज़ि.) ने कभी शराब नहीं पी। एक अच्छाई तो उनमें सबसे अधिक थी। वे बड़े शर्मीले थे, बेशर्मी की बातों को एकदम पसन्द नहीं करते थे। देखा आपने, कैसे अच्छे और शरीफ़ आदमी थे हज़रत उसमान (रज़ि.)!

मुसलमान होना

हज़रत उसमान (रज़ि.) हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) के दोस्तों में से थे। जब नबी (सल्ल.) ने मक्का मुअज़्ज़मा में दीने इस्लाम फैलाना शुरू किया तो

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने हज़रत उसमान (रज़ि.) को इस्लाम की ख़ूबियाँ समझाईं। हज़रत उसमान (रज़ि.) नबी (सल्ल.) के पास आए और मुसलमान हो गए। उन्होंने यह भी नहीं सोचा कि इस्लाम और नबी (सल्ल.) के सबसे बड़े दुश्मन उन्हीं के ख़ानदान के लोग हैं, वे लोग जानेंगे तो क्या कहेंगे।

हज़रत उसमान (रज़ि.) के मुसलमान होने के बाद उनके ख़ानदानवालों ने सुना तो उनके सीने पर साँप लोट गया। उनको बड़ी शर्म आई कि उनके घराने का पढ़ा-लिखा, मालदार और जवान आदमी नबी (सल्ल.) का तरफ़दार हो गया। उन सबने हज़रत उसमान (रज़ि.) को बहुत सताया। हज़रत उसमान (रज़ि.) तो सच्चे दिल से मुसलमान हुए थे। वे अपने इस्लाम पर जमे रहे।

नबी (सल्ल.) ने हज़रत उसमान (रज़ि.) का ईमान इतना मज़बूत देखा तो अपनी प्यारी बेटी रुक़ैया (रज़ि.) की शादी उनके साथ कर दी। कुछ दिनों के बाद हज़रत रुक़ैया (रज़ि.) का इन्तिक़ाल हो गया तो नबी (सल्ल.) ने अपनी दूसरी बेटी हज़रत उम्मे कुलसूम (रज़ि.) का निकाह हज़रत उसमान (रज़ि.) से कर दिया।

हज़रत उसमान (रज़ि.) के घरानेवालों ने देखा कि नबी (सल्ल.) उसमान (रज़ि.) पर बहुत मेहरबान हैं तो उन्होंने उनपर इतना ज़्यादा ज़ुल्म करना और सताना शुरू कर दिया कि बरदाश्त से बाहर हो गया। दूसरे मुसलमानों पर भी इस प्रकार के ज़ुल्म हो रहे थे। यह देखकर नबी (सल्ल.) ने मुसलमानों को राय दी कि वे हबशा चले जाएँ। यह आदेश पाकर हज़रत उसमान (रज़ि.) हज़रत उम्मे कुलसूम (रज़ि.) को लेकर हबशा की तरफ़ चले गए। कुछ दिनों के बाद सुना कि मक्का के सभी लोग मुसलमान हो गए हैं। यह ख़बर सुनकर मक्का वापस चले आए, लेकिन यहाँ आकर मालूम हुआ कि वह ख़बर ग़लत थी। अब क्या करते, वे मक्का ही में फिर रहने लगे और घरवालों के अत्याचार सहते रहे। कुछ दिनों के बाद अल्लाह तआला की तरफ़ से नबी (सल्ल.) के पास हुक्म आया कि मदीना को हिजरत (प्रस्थान) कर जाएँ। आप (सल्ल.) ने यह हुक्म मुसलमानों को सुनाया। मुसलमान मक्का छोड़कर मदीना जाने लगे। हज़रत उसमान (रज़ि.) भी मक्का से मदीना हिजरत (स्वदेश त्याग) कर गए। फिर जब नबी (सल्ल.) मदीना में आ गए तो तन-मन-धन से नबी (सल्ल.) का साथ देने में लग गए और फिर उम्रभर अल्लाह के दीन को फैलाने में लगे रहे।

दीन की सेवा

हज़रत उसमान (रज़ि.) मुसलमान होने से पहले भी बड़े अच्छे आदमी थे। मुसलमान होने के बाद उनकी नेकियाँ और अच्छाइयाँ बहुत अधिक बढ़ गईं। अब उनको नबी (सल्ल.) से बहुत ज़्यादा मुहब्बत बढ़ गई। दिल में अल्लाह का डर पैदा हो गया। वे हर समय आख़िरत के हिसाब-किताब से डरने लगे। अल्लाह तआला ने उनको बहुत मालदार बनाया था, लेकिन उनको माल से मुहब्बत नहीं थी। वे अपने माल से ग़रीबों और रिश्तेदारों की मदद किया करते थे। अब वे अपना माल इस्लाम पर न्यौछावर करने लगे। मदीना में नबी (सल्ल.) ने एक मसजिद बनवाई थी। वह मसजिद छोटी थी। हज़रत उसमान (रज़ि.) ने अपने पैसे से उसे ख़ूब बढ़ा दिया। मदीना के पास एक जगह पानी बहुत कम था और वहाँ मुसलमानों को दुश्मन यहूदी अपने कुएँ से पानी नहीं लेने देते थे। हज़रत उसमान (रज़ि.) ने अपने पैसे से वहाँ कुआँ ख़रीदा और मुसलमानों को दे दिया। मुसलमानों की दुश्मनों से लड़ाइयाँ होतीं तो लड़ाइयों का अधिकतर ख़र्च हज़रत उसमान (रज़ि.) उठाते। एक लड़ाई में तो पूरी फ़ौज का तिहाई ख़र्च अपने ज़िम्मे ले लिया। हर जुमा (शुक्रवार) को एक ग़ुलाम आज़ाद करने लगे। दो लाख की एक रक़म अपने ख़ानदान के ग़रीबों के लिए अलग कर दी थी जिससे उनके घरवाले लाभ उठाते थे।

यह तो हम बता ही चुके हैं कि हज़रत उसमान (रज़ि.) बचपन ही से बड़े शर्मीले थे। मुसलमान होने के बाद तो आप और अधिक शर्मीले हो गए। वे कभी नंगे होकर नहीं नहाते थे। शरीर का जो भाग छिपाना इस्लाम में फ़र्ज़ है, हज़रत उसमान (रज़ि.) के शरीर का वह भाग कभी किसी ने नहीं देखा।

नबी (सल्ल.) हज़रत उसमान (रज़ि.) की इन ख़ूबियों की वजह से उनकी बड़ी इज़्ज़त करते थे।

एक बार नबी (सल्ल.) ने मक्का के क़ुरैश से सुलह करने के लिए उनको भेजा। वे मक्का गए तो दुश्मनों ने उन्हें क़ैद कर दिया। अफ़वाह यह हुई कि हज़रत उसमान (रज़ि.) को शहीद कर दिया गया। इस ख़बर से नबी (सल्ल.) को इतना दुख हुआ कि आपने बदला लेने का इरादा कर लिया। तमाम सहाबा (रज़ि.) भी हज़रत उसमान (रज़ि.) पर अपनी जानें न्योछावर करने के

लिए तैयार हो गए लेकिन फिर ख़बर मिली कि वे ख़ैरियत से हैं, तो नबी (सल्ल.) ने अपना इरादा बदल लिया।

एक बार नबी (सल्ल.) सहाबा (रज़ि.) के साथ बैठे थे। उस समय नबी (सल्ल.) का घुटना थोड़ा-थोड़ा दिखाई दे रहा था। इतने में सुना कि उसमान (रज़ि.) आ रहे हैं। यह सुनकर नबी (सल्ल.) ने तुरन्त घुटना छिपा लिया। सहाबा (रज़ि.) ने पूछा – "नबी ने अब तक नहीं छुपाया, अब क्यों छुपा लिया?" कहा, "उसमान (रज़ि.) आ रहे हैं, उनकी हया (लज्जा) से फ़रिश्ते भी शर्माते हैं।"

इस तरह हज़रत उसमान (रज़ि.) नबी (सल्ल.) के साथ रहते रहे। नबी (सल्ल.) के पास रहते-रहते उनके अन्दर वे सभी इस्लामी ख़ूबियाँ पैदा हो गई थीं जो एक मुसलमान में होनी चाहिएँ। अल्लाह का डर, रसूल (सल्ल.) से मुहब्बत, नमाज़ का शौक़, क़ुरआन की तिलावत, नर्म-दिली, सब्र व शुक्र, फ़ैयाज़ी और ख़ैरात करना और इसी तरह की सारी अच्छाइयाँ उनके अन्दर इकट्ठा हो गईं। कैसे अच्छे थे हज़रत उसमान (रज़ि.)!

एक मज़ेदार वाक़िआ

एक बार मदीना में अकाल पड़ा। वहाँ की सबसे बड़ी ख़ुराक खजूर थी। वह उस साल पैदा ही नहीं हुई। उसका व्यापार भी न हो सका तो बाहर से भी माल आना बन्द हो गया। अब तो लोग परेशान होने लगे, भूखों मरने की नौबत आ गई। उस ज़माने में हज़रत उसमान (रज़ि.) ने बाहर के देशों से बहुत अधिक अनाज मँगाया। मदीना में यह ख़बर फैली तो अनाज के व्यापारी ग़ल्ला ख़रीदने दौड़ पड़े और दो गुने, तीन गुने लाभ पर अनाज माँगने लगे। हज़रत उसमान (रज़ि.) ने जवाब दिया कि मुझे इससे अधिक लाभ मिल रहा है। अब तो व्यापारी बहुत हैरान हुए। यह ख़बर हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) को दी गई। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) उस समय ख़लीफ़ा थे। उन्होंने आकर कहा – "ऐ उसमान! तुम अल्लाह के रसूल (सल्ल.) के दामाद और सहाबी हो, तुमको पैसे का लालच नहीं होना चाहिए। अल्लाह के बन्दे भूखों मर रहे हैं और तुम हो कि अधिक से अधिक लाभ कमाना चाहते हो। तुम बताओ कि तुमको सबसे अधिक मुनाफ़ा कौन दे रहा है?"

हज़रत उसमान (रज़ि.) ने जवाब दिया – "अल्लाह सबसे अधिक लाभ देनेवाला है। मैंने उसके हाथ यह अनाज बेच दिया। आप ख़लीफ़ा हैं, आप यह अनाज ले जाइए और अल्लाह के बन्दों में बाँट दीजिए।"

यह सुनकर लोग ख़ुश हो गए और कहने लगे – "बेशक उसमान (रज़ि.) ने इस बार व्यापार में ख़ूब लाभ कमाया।"

ख़िलाफ़त का काम

यह कारण था कि उस समय के सभी मुसलमान हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) और हज़रत उमर (रज़ि.) के बाद हज़रत उसमान (रज़ि.) को सबसे बड़ा सहाबी मानते थे और इसी लिए हज़रत उमर (रज़ि.) के बाद इन्हीं को ख़लीफ़ा बनाया गया।

हज़रत उसमान (रज़ि.) ने ख़िलाफ़त का काम बड़े अच्छे तरीक़े से किया। वे धनवान आदमी थे, इसी लिए वेतन नहीं लेते थे। ख़ुदा के लिए ही ख़िलाफ़त का काम करते थे। उनके समय में बड़े-बड़े देश फ़तह हुए। पूरा ईरान इस्लामी हुकूमत में आया, ईरान का बादशाह नेरोगरो उन्हीं के काल में मारा गया। ग़ज़नी और काबुल का देश भी फ़तह किया गया। पश्चिम की तरफ़ एक बड़ा देश तूनिस भी इस्लामी हुकूमत के अधीन हो गया। हज़रत उसमान (रज़ि.) के समय में समुद्री लड़ाइयों के लिए बहरी (समुद्री) बेड़ा भी बनाया गया और वह बहुत कामयाबी के साथ समुद्री डाकुओं का सामना करता रहा। उसी बेड़े के सिपाहियों ने क़बरस का द्वीप ईसाइयों से छीन लिया और अंदलुस पर भी हमला किया। हज़रत उसमान (रज़ि.) ने प्रजा के आराम के लिए बहुत-से पुल बनवाए। सड़कें बनवाईं, मुअज़्ज़िनों (अज़ान देनेवालों) के वेतन तय किए। कैसे अच्छे थे तीसरे ख़लीफ़ा हज़रत उसमान (रज़ि.)! ऐसे अच्छे और नर्मदिल ख़लीफ़ा को कुछ फ़सादियों ने शहीद कर दिया। मुसलमानों को आपकी शहादत से बड़ा अफ़सोस हुआ। हज़रत उसमान (रज़ि.) ने बारह साल शासन का काम किया। यानी 24 हिजरी से 35 हिजरी तक। उनपर अल्लाह की रहमत हो। आमीन!

हज़रत अली (रज़ि.)

हज़रत अली (रज़ि.) मक्का के मशहूर ख़ानदान क़ुरैश के हाशिमी घराने से थे। वे प्यारे नबी (सल्ल.) के प्यारे चचा अबू तालिब के बेटे थे। इस रिश्ते से वे प्यारे नबी (सल्ल.) के चचेरे भाई थे। नबी (सल्ल.) बचपन ही से अपने चचा अबू तालिब के साथ रहते थे। जब आप (सल्ल.) की शादी हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) से हो गई तो आप उन्हीं के साथ रहने लगे। फिर जब हज़रत अली (रज़ि.) पाँच साल के हुए तो नबी (सल्ल.) ने उनको भी अपने साथ रख लिया। इस तरह हज़रत अली (रज़ि.) को बचपन ही से नबी (सल्ल.) के साथ रहने का मौक़ा मिल गया। अल्लाह तआला ने बहुत अच्छा ज़ेहन दिया था। वे बचपन ही से नबी (सल्ल.) से बहुत मुहब्बत करने लगे थे। फिर जब अल्लाह तआला ने नबी (सल्ल.) को नबी बनाया तो उस समय हज़रत अली (रज़ि.) दस साल से कम उम्र के ही थे। लेकिन जैसे नबी (सल्ल.) ने अपने नबी होने का एलान किया, हज़रत अली (रज़ि.) ने सुनते ही आपको नबी मान लिया और मुसलमान हो गए।

कुछ दिनों के बाद नबी (सल्ल.) ने हज़रत अली (रज़ि.) से कहा, "हाशिमी घराने के मर्दों को बुला लाओ।" हज़रत अली (रज़ि.) सबको बुला लाए तो उन सबकी ख़ातिरदारी का इन्तिज़ाम उन्हीं को सौंपा गया। हज़रत अली (रज़ि.) उस समय बारह-तेरह साल के किशोर ही थे, लेकिन उन्होंने बड़ा अच्छा इन्तिज़ाम किया। सबको खाना खिलाया। इसके बाद नबी (सल्ल.) ने एक तक़रीर की। आप (सल्ल.) ने अल्लाह का दीन (धर्म) फैलाने की ओर ध्यान दिलाया। इसके बाद पूछा कि इस काम में कौन मेरा साथ देता है?

इस मौक़े पर कोई भी साथ देने के लिए तैयार नहीं हुआ तो हज़रत अली (रज़ि.) ने खड़े होकर कहा की यह सच है कि मैं सबसे कम उम्र का हूँ, दुबला-पतला हूँ और मेरी आँखें भी आई हुई हैं, फिर भी मैं आपका साथ दूँगा।

हज़रत अली (रज़ि.) की इस बात पर लोगों को बड़ा ताज्जुब हुआ कि एक नौजवान की यह हिम्मत! सच्ची बात यह है कि हज़रत अली (रज़ि.) ने बारह-तेरह साल की उम्र में जो कुछ कहा, उम्रभर उसको निभाया। आगे चलकर मक्का के क़ुरैश, अरब के मुशरिक और यहूदियों से बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ हुईं। इन सभी लड़ाइयों में हज़रत अली (रज़ि.) नबी (सल्ल.) के साथ रहे और हर लड़ाई में बहादुरी से लड़े। बड़े-बड़े कठिन समय पर नबी (सल्ल.) का साथ दिया। जब नबी (सल्ल.) हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) के साथ मदीना हिजरत कर गए तो हज़रत अली (रज़ि.) को घर में अपनी जगह सुलाया और कहा कि जितने लोगों की अमानतें मेरे पास रखी हैं उन्हें वापस कर देना, उसके बाद ख़ुद भी मदीना चले आना।

हज़रत अली (रज़ि.) ख़तरे को समझ रहे थे। हिजरत की रात में दुश्मनों ने नबी (सल्ल.) का घर घेर लिया था और यह तय किया था कि सुबह होते ही घर में घुसकर (तौबा-तौबा) नबी (सल्ल.) को क़त्ल कर देंगे। इस ख़तरनाक मौक़े पर हज़रत अली (रज़ि.) नबी (सल्ल.) की जगह चादर ओढ़कर सो गए और इसकी परवाह तक नहीं की कि कहीं नबी (सल्ल.) के धोखे में लोग उन्हीं को क़त्ल न कर दें।

हिजरत के बाद जब हज़रत अली (रज़ि.) मदीना पहुँचे तो नबी (सल्ल.) ने अपनी प्यारी बेटी हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) की शादी उनसे कर दी। हज़रत अली (रज़ि.) मदीना में भी नबी (सल्ल.) ही के साथ रहते थे। शादी के बाद अलग रहने लगे। हालत यह थी कि घर में बहुत ही ग़ुरबत का माहौल था। नबी (सल्ल.) ने उनकी ग़रीबी पर ध्यान न दिया, बल्कि यह देखा कि वे एक बहुत ही अच्छे मुसलमान और दीनदार इनसान हैं। नबी (सल्ल.) ने प्यारी बेटी को समझाया कि मैंने तुम्हारी शादी ऐसे इनसान से की है जो मेरी निगाह में बहुत अच्छा और बहुत प्यारा है।

हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) से हज़रत अली (रज़ि.) की कई सन्तानें हुईं। उनमें से हज़रत हसन (रज़ि.) और हज़रत हुसैन (रज़ि.) सबसे अधिक मशहूर हैं।

हज़रत अली (रज़ि.) के पास कोई जायदाद नहीं थी। वे मेहनत-मज़दूरी करके अपने बाल-बच्चों का पेट पालते थे। मेहनत-मज़दूरी करके जो कुछ कमा कर लाते उसका बड़ा हिस्सा ख़ैरात में निकल जाता। कभी-कभी ऐसे होता कि कुल आमदनी ख़ैरात करते और घर में आते तो ख़ाली हाथ होते। कभी-कभी ऐसा होता कि बीबी फ़ातिमा (रज़ि.) खाना तैयार करतीं, सब मिलकर खाना खाने बैठते और दरवाज़े पर फ़क़ीर आवाज़ लगाता तो खाना उसे दिया जाता और घर के लोग भूखे सो जाते। भूखे सोनेवालों में बच्चे भी होते। घर में बच्चों को ऐसी बातें सिखाई जातीं कि वे भूखे होने की शिकायत नहीं करते थे और दूसरों को देकर वे भी ख़ुश होते। यही कारण था कि हज़रत अली (रज़ि.) कभी मालदार न हो सके। घर में हमेशा ग़रीबी ही रही। बीबी फ़ातिमा (रज़ि.) घर का काम ख़ुद करतीं। बाहर से पानी भर कर लातीं, चक्की पीसतीं, खाना पकातीं। हज़रत अली (रज़ि.) यह सब देखते तो उन्हें तरस भी आता।

एक बार ऐसा हुआ कि नबी (सल्ल.) के पास बाहर से बहुत-सा ग़नीमत का माल (दुश्मन का वह माल जो लड़ाई में हाथ आए) आ गया। हज़रत अली (रज़ि.) ने घर आकर बीबी फ़ातिमा (रज़ि.) से कहा कि इस मौक़े पर जाकर नबी (सल्ल.) से कहिए कि एक लौंडी दे दें। वह लौंडी घर के कामों में मदद करेगी।

हज़रत अली (रज़ि.) के कहने पर हज़रत फ़ातिमा नबी (सल्ल.) की सेवा में हाज़िर हुईं, लेकिन शर्म के कारण कुछ न कह सकीं। चुपचाप वापस चली आईं। इससे पता चलता है कि हज़रत अली (रज़ि.) थे तो ग़रीब लेकिन घर के सभी लोग बड़े ग़ैरतमन्द (स्वाभिमानी) थे। किसी से कुछ माँगना पसन्द न करते थे।

मदीना आने के बाद इस्लाम के दुश्मनों से नबी (सल्ल.) को बड़ी कठिन लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं। सबसे पहली लड़ाई बद्र के मैदान में हुई। इस लड़ाई में दुश्मन के बड़े-बड़े बहादुरों को हज़रत अली (रज़ि.) ने मार गिराया। फिर उहुद की लड़ाई हुई तो उसमें भी बड़ी बहादुरी से लड़े। इसी तरह ख़ंदक की लड़ाई हुई तो अरब के मशहूर बहादुर उमर बिन अब्दे वुद का सामना किया। वह

एक हज़ार सवारों के बराबर माना जाता था। लेकिन हज़रत अली (रज़ि.) की तलवार से बच न सका। फिर जब ख़ैबर पर नबी (सल्ल.) ने चढ़ाई की तो यह क़िला हज़रत अली (रज़ि.) ने बढ़कर फ़तह किया। इस तरह जितनी लड़ाइयाँ लड़ी गईं, हज़रत अली (रज़ि.) ने सबमें बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। हमेशा अपने दुश्मन पर विजय पाई। किसी से भी नहीं हारे।

यह तो थी हज़रत अली (रज़ि.) की बहादुरी और नबी (सल्ल.) पर जान न्यौछावर करने का हाल। दीनदार होने के लिहाज़ से भी उनका स्थान बहुत ऊँचा था। क़ुरआन और हदीस की बातों को ऐसी अच्छी तरह समझते थे कि बड़े-बड़े लोग उनसे मशविरा करते। नबी (सल्ल.) के बाद जब हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ख़लीफ़ा हुए तो वे भी उनसे मशविरा करते थे। हज़रत उमर (रज़ि.) जो दूसरे ख़लीफ़ा थे और ख़ुद बहुत समझदार आदमी थे, वे भी उनके मशविरे के बिना कोई काम नहीं करते थे। हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) ने उनकी ख़ूबियों को देखकर जिन छः बुज़ुर्गों को ख़लीफ़ा बनाने के लिए कहा था उनमें हज़रत अली (रज़ि.) का नाम भी था। यही वजह थी कि हज़रत उसमान (रज़ि.) की शहादत के बाद मुसलमानों ने उनको अपना ख़लीफ़ा चुना।

हज़रत अली (रज़ि.) ने ख़लीफ़ा होने के बाद उसी तरह इस्लामी हुकूमत का काम किया जिस तरह नबी (सल्ल.) सिखा-समझा गए थे। क़ुरआन व सुन्नत के अनुसार ही सभी काम किए। न तो किसी के दबाव में आकर कोई काम किया और न किसी लालच में आकर इनसाफ़ के ख़िलाफ़ कोई बात की। नमूने के तौर पर नीचे हम सिर्फ़ तीन वाक़िआत लिखते हैं –

1.एक बार हज़रत अली (रज़ि.) के भाई अक़ील उनके पास आए और अपनी ज़रूरत के लिए कुछ रुपये माँगे। हज़रत अली (रज़ि.) ने भाई को जवाब दिया कि बैतुलमाल में जो कुछ है अल्लाह का है और वह अल्लाह के मजबूर बन्दों के लिए है। मैं अल्लाह की अमानत में ख़ियानत नहीं कर सकता। मेरे पास अपना माल कुछ नहीं है जिसमें से दूँ।

2. एक बार हज़रत अली (रज़ि.) की ज़िरह खो गई। वह ज़िरह एक यहूदी के पास थी। उससे पूछा गया तो उसने उसे अपनी बताई। हज़रत अली

(रज़ि.) ने इस्लामी अदालत में दावा कर दिया। उस समय मदीना की इस्लामी अदालत के क़ाज़ी शुरैह (रह.) थे। क़ाज़ी शुरैह (रह.) ने हज़रत अली (रज़ि.) से गवाह माँगा। उन्होंने गवाही में अपने बेटे हसन (रज़ि.) और ग़ुलाम अंबर को पेश किया। क़ाज़ी शुरैह (रह.) ने यह गवाहियाँ रद्द कर दीं और कहा कि इनमें से एक बेटा और दूसरा ग़ुलाम है, कोई और गवाह लाइए।

हज़रत अली (रज़ि.) दूसरी गवाहियाँ पेश न कर सके तो ज़िरह यहूदी को दे दी गई। यह इनसाफ़ देखकर यहूदी के दिल पर बड़ा असर पड़ा। उसने कहा कि इस्लाम की अदालत में ख़लीफ़ा एक आम आदमी के बराबर खड़ा किया जाता है तथा न्याय करने में किसी का पक्षपात नहीं किया जाता। यह कहकर यहूदी मुसलमान हो गया। फिर उसने कहा कि यह ज़िरह हज़रत अली (रज़ि.) ही की है, लेकिन हज़रत अली (रज़ि.) ने ज़िरह उसी के पास रहने दी और अदालत से चले आए।

3. एक बार कुछ लोगों को पकड़कर हज़रत अली (रज़ि.) के सामने लाया गया। उनपर इलज़ाम था कि ये लोग हज़रत अली (रज़ि.) को गालियाँ देते हैं और उनके ख़िलाफ़ बातें करते हैं। अंदेशा यह है कि लोग आपके विद्रोही हो जाएँ, इसलिए इनको क़ैद कर देना चाहिए।

हज़रत अली (रज़ि.) ने जवाब दिया कि जब तक ये लोग अपराध न करें मैं इनको सज़ा नहीं दे सकता। रह गई गालियाँ देने और मुझे बुरा कहने की बात, तो मैं इन बातों का जवाब नहीं देता। तुम चाहो तो गालियों के बदले उन्हें गालियाँ दो, मगर गालियाँ बकना ख़ुदा को पसन्न नहीं है।

इस जवाब के बाद सारे क़ैदी छोड़ दिए गए। इस तरह पाँच साल से कुछ कम हज़रत अली (रज़ि.) ने ख़िलाफ़त का काम किया। ख़लीफ़ा होने के बाद आपको कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, लेकिन आपने हर कठिनाई को सहन किया और अल्लाह के रास्ते से न हटे! बड़े अफ़सोस की बात है कि ऐसे अच्छे ख़लीफ़ा के कुछ लोग विरोधी हो गए और उन्होंने बहुत-से लोगों को अपनी तरफ़ मिला लिया । इसके बाद हज़रत अली (रज़ि.) से लड़े । मगर जो लोग जानते थे कि हज़रत अली (रज़ि.) ही हक़ पर हैं, उन्होंने इन लड़नेवालों

का साथ नहीं दिया। इन लड़ाइयों में हज़रत अली (रज़ि.) ही की जीत हुई और उन्होंने हारनेवालों को माफ़ कर दिया, वे सब भी मुसलमान ही थे।

ऐसे अच्छे ख़लीफ़ा को एक ज़ालिम ने रमज़ान जैसे मुबारक महीने में उस समय शहीद कर दिया जब कि आप फ़ज्र की नमाज़ के लिए मसजिद जा रहे थे।

''इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन।

इस तरह सन् 40 हिजरी में इस्लाम के चौथे ख़लीफ़ा इस दुनिया से चले गए। फिर कोई ऐसा ख़लीफ़ा ने हो सका ज़िसे मुसलमान इस तरह का ख़लीफ़ा कह सकें जैसे हज़रत अबू बक्र (रज़ि.), हज़रत उमर (रज़ि.), हज़रत उसमान (रज़ि.) और हज़रत अली (रज़ि.) थे। ये चारों प्यारे ख़लीफ़ा ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन कहलाते हैं। ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन का अर्थ यह है कि वे अल्लाह और अल्लाह के रसूल (सल्ल.) के बनाए हुए क़ायदे के अनुसार ख़िलाफ़त का काम ठीक-ठीक करनेवाले थे । इन सबने मिलकर तीस साल ख़िलाफ़त का काम किया। अल्लाह इन सबपर अपनी रहमत नाज़िल करे और हमें पैरवी की तौफ़ीक़ दे। आमीन!

ख़िलाफ़ते राशिदा की मुख्य बातें

1. खिलाफ़ते राशिदा की पहली मुख्य बात यह थी कि तमाम मुसलमान किसी दबाव या लालच के बिना अपने में से सबसे अच्छे मुसलमान को इस्लामी हुकूमत का काम करने के लिए चुन लेते थे। पहले ख़लीफ़ा हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) को इसी तरह चुना गया था।

2. अगर कोई ख़लीफ़-ए-राशिद समझदार मुसलमानों से मशविरा करके अपनी ज़िन्दगी में ही किसी को ख़लीफ़ा नियुक्त कर देता था, यानी यह कह देता था कि मेरे बाद इनको ख़लीफ़ा बनाना तो सारे मुसलमान उसके बाद नियुक्त किए गए इनसान को ख़लीफ़ा मान लेते थे। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने हज़रत उमर (रज़ि.) के बारे में इसी तरह की वसीयत की थी।

3. अगर कोई ख़लीफ़ा अपनी ज़िन्दगी में कई आदमियों के नाम बताकर यह कह देता था कि इनमें से किसी एक को ख़लीफ़ा बना लेना, तो मुसलमान उन्हीं में से एक को ख़लीफ़ा चुन लेते थे। हज़रत उमर (रज़ि.) ने अपनी ज़िन्दी में छ: बुज़ुर्गों के नाम बता दिए थे। मुसलमानों ने उन्हीं में से हज़रत उसमान (रज़ि.) को ख़लीफ़ा बनाया था।

नोट:- ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन की औलाद में बड़े अच्छे और क़ाबिल लोग हुए, लेकिन उन्होंने यह पसन्द नहीं किया कि अपनी जगह अपनी औलाद में से किसी एक को अपनी ज़िन्दगी में ख़लीफ़ा चुन देते और कह जाते कि मेरे बाद मेरे इस बेटे को ख़लीफ़ा बनाना। कुछ लोगों ने हज़रत उमर (रज़ि.) को यह राय दी थी कि आपके बेटे हज़रत अब्दुल्लाह बहुत ही समझदार, अच्छे और सच्चे मुसलमान हैं। अपने बाद उनको ख़लीफ़ा चुन दें। लेकिन हज़रत उमर (रज़ि.) ने इस राय को पसन्द नहीं किया, बल्कि कहा कि मेरे बाद मेरे औलाद में से किसी को ख़लीफ़ा हरगिज़ न बनाया जाए।

इसका कारण यह था कि ये बुज़ुर्ग खिलाफ़ते राशिदा (इस्लामी हुकूमत)

को बादशाहत नहीं मानते थे कि बाप के बाद बेटा उसकी जगह तख़्त पर बैठे। ये बुज़ुर्ग इस्लामी हुकूमत को अल्लाह की अमानत समझते थे। ये डरते थे कि मुहब्बत में आकर अपने ही क़ाबिल (योग्य) बेटे को ख़लीफ़ा बना जाएँ और उससे अधिक सच्चा और योग्य मुसलमान मौजूद हो तो इस तरह अमानत में ख़यानत हो जाए।

कुछ लोगों ने हज़रत अली (रज़ि.) से पूछा, "क्या हम आपके बाद आपके प्यारे बेटे हज़रत हसन (रज़ि.) को ख़लीफ़ा बना लें?" कहा, "मैं न तुमको इसका हुक्म देता हूँ और न रोकता हूँ। तुम लोग ख़ुद अच्छी तरह समझ सकते हो।" एक अन्य व्यक्ति ने इसी तरह की बात कही तो कहा, "मैं मुसलमानों को उसी हालत में छोड़ूँगा जिस हालत में रसूल (सल्ल.) ने छोड़ा था।"

4. ख़िलाफ़ते राशिदा (इस्लामी हुकूमत) के चारों ख़लीफ़ा हज़रत अबू बक्र (रज़ि.), हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.), हज़रत उसमान (रज़ि.) और हज़रत अली (रज़ि.) समझदार लोगों की राय से इस्लामी हुकूमत का काम करते थे। ऐसे लोगों को इकट्ठा करते, बात उनके सामने रखते और सबसे पहले ये सोचते कि अल्लाह तआला ने उस मामले के बारे में क्या कहा है? अगर क़ुरआन में उस मामले के बारे में हुक्म मिल जाता तो बस उसी को मान लेते। अगर क़ुरआन में साफ़-साफ़ हुक्म न मिलता तो ये मालूम करते कि प्यारे रसूल (सल्ल.) ने उस मामले के बारे में क्या कहा है या करके दिखलाया है? अगर प्यारे रसूल (सल्ल.) की ज़िन्दगी में ऐसी बात न मिलती तो फिर सब मिलकर सोचते और फिर जो सबकी राय होती, ख़लीफ़ा वही करता था।

5. प्यारे रसूल (सल्ल.) के चारों प्यारे ख़लीफ़ा ख़ुलाफ़ा-ए-राशिदीन) बैतुलमाल (इस्लामी ख़ज़ाने) को अल्लाह और अल्लाह के बन्दों का माल समझते थे। उस माल में से ज़रूरत से अधिक माल लेने से डरते थे। अपना ख़र्च आम आदमी के ख़र्च के बराबर लेते थे। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने तो मरते वक़्त यह वसीयत की थी कि मैंने बैतुलमाल से जो कुछ

लिया है, मेरा मकान और जायदाद बेचकर वापस कर दिया जाए। हज़रत उसमान (रज़ि.) बैतुलमाल से कुछ न लेते थे।

हज़रत उमर (रज़ि.) ने एक बार प्यारे सहाबी हज़रत सलमान फ़ारसी (रज़ि.) से पूछा, "मैं बादशाह हूँ या ख़लीफ़ा?" उन्होंने जवाब दिया कि अगर आप एक पैसा भी ग़लत ढंग से लेंगे तो आप बादशाह कहलाएँगे, फिर आप ख़लीफ़ा नहीं हो सकते।

6. इस्लामी हुकूमत का काम क़ुरआन व सुन्नत और अच्छे-सच्चे और समझदार मुसलमानों के फ़ैसलों के अनुसार किया जाता था।

7. इस्लामी अदालत में इस्लामी क़ानून के आगे ख़लीफ़ा और एक साधारण आदमी को बराबर माना जाता था। इनसाफ़ सबके लिए बराबर था। किसी को छूट नहीं दी जाती थी।

8. ग़ैर-मुसलिम लोगों से तास्सुब नहीं होता था। किसी को मुसलमान न होने के कारण सताया नहीं जाता था। ग़ैर-मुसलिमों को अपने मज़हब के बारे में पूरी आज़ादी थी।

9. अगर ख़लीफ़ा ग़लत काम करने का इरादा करता तो हर व्यक्ति उसे रोक और टोक सकता था। हज़रत उमर (रज़ि.) को एक बुढ़िया ने डाँट दिया था और हज़रत उमर (रज़ि.) ने उसकी राय मान ली थी।